मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 139 • वर्ष 15, अंक 3 • जून 2025 • दस रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

काग़ज़ों पर आवास का अधिकार और ज़मीन पर बुलडोज़र!! 3

क्या फ़िलिस्तीन में जारी जनसंहार के ख़िलाफ़ बोलना हमारे देश में अपराध है? 7

कहानी 'टूटन' 15

ईरान पर इज़रायली-अमेरिकी हमला और मध्य-पूर्व में साम्राज्यवादी युद्ध का विस्तार

साम्राज्यवाद आज भी एक काग़ज़ी बाघ है!

युद्ध, नरसंहार और विनाश के अलावा साम्राज्यवाद मानवता को कुछ और नहीं दे सकता! मानवता को बचाने की एकमात्र शर्त पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का नाश है!

सम्पादकीय अग्रलेख

पिछले 20 महीने से गाज़ा में फ़िलिस्तीनी अवाम और बच्चों का नरसंहार जारी रखने के बाद गत 13 जून को ज़ायनवादी इज़रायल ने बिना किसी उकसावे के एकतरफ़ा तरीक़े से ईरान पर हमला बोला दिया। अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों और ईरान की राष्ट्रीय सम्प्रभुता की धज्जियाँ उड़ाते हुए मध्य-पूर्व में पश्चिमी साम्राज्यवाद के लठैत इज़राइल ने ईरान पर एकतरफ़ा हवाई हमले करके मध्य-पूर्व में जारी साम्राज्यवादी युद्ध को नया विस्तार दिया। इसके कुछ दिनों बाद 22 जून को अमरीका भी प्रत्यक्ष तौर पर इस युद्ध में शामिल हो गया और उसने तीन ईरानी नाभिकीय ठिकानों पर हवाई हमले किये। हालाँकि अमेरिका द्वारा किये गये यह हमले प्रतीकात्मक ज़्यादा थे जिसके कारण अमेरिका की आंतरिक घरेलू राजनीति में निहित हैं। लेकिन इतना तय है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने वर्चस्व के लगातार होते ह्रास से सकपकाया हुआ है और इसलिए मध्यपूर्व में उसका भाड़े का मुख़्तार ज़ायनवादी इज़राइल एक के बाद एक आक्रामक विस्तारवादी मंसूबों को अंजाम दे रहा है। ईरान द्वारा इज़रायल और फिर मध्य-पूर्व में मौजूद अमेरिकी सैन्य ठिकानों पर हमले के कारण अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसके भाड़े के लठैत इज़रायल को क़दम पीछे हटाने पड़े हैं। यह मध्य-पूर्व में बदलते समय के संकेत हैं। यह अमेरिकी साम्राज्यवाद की एक शर्मनाक हार थी। अपनी तमाम सैन्य शक्तिमत्ता के बावजूद ईरान के लड़ाकू रवैये के सामने अमेरिकी साम्रज्यवाद को क़दम पीछे हटाने पर मजबूर होना पड़ा। बताने की ज़रूरत नहीं है कि इसके पीछे रूस-चीन साम्राज्यवादी धुरी का समर्थन भी है। अमेरिकी साम्राज्यवाद यूक्रेन में मुँह की खाने के बाद इस नयी उभरती साम्राज्यवादी धुरी से एक और छाया-युद्ध में उलझना नहीं चाहता है, क्योंकि एक ओर अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प का प्रमुख सामाजिक आधार किसी भी नये युद्ध में अमेरिका की भागीदारी नहीं चाहता है और वहीं दूसरी ओर आंग्ल-अमेरिकी साम्राज्यवादी धुरी तथा यूरोपीय संघ के साथ उसके संश्रय की आन्तरिक एकता भी इज़रायली नरसंहार के प्रश्न पर संकटग्रस्त है। कुल मिलाकर, फ़िलिस्तीन के प्रश्न ने आन्तरिक साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा को एक नये सिरे पर पहुँचाकर विश्व साम्राज्यवाद के राजनीतिक और साथ ही आर्थिक संकट को एक नये मुक़ाम पर पहुँचा दिया है और ऊपरी सैन्य ताक़त के बावजूद इसके दूरगामी तौर पर कमज़ोर चरित्र को दिखला दिया है। दुनिया की जनता का बहुलांश आज अमेरिकी साम्राज्यवादी धुरी के विरुद्ध खड़ा है और ठीक इसी वजह से उसकी शक्ति का ह्रास पिछले दिनों पहले से ज़्यादा तीव्र हो गया है।

आज भारत समेत दुनिया भर की मेहनतकश अवाम को समझना होगा कि साम्राज्यवाद मानवता को सिवाय युद्ध, तबाही और नरसंहार के कुछ भी नहीं दे सकता है। पूँजीवाद नाम की यह बूढ़ी मुर्गी, अपनी मरणासन्न अवस्था यानी साम्राज्यवाद के दौर में, दुनिया को जंग, क़त्लेआम, पर्यावरणीय विनाश और तबाही-बर्बादी जैसे सड़े हुए अण्डे ही दे सकती है। इसका एक-एक दिन इंसानियत के वजूद के लिए ख़तरा है। पश्चिमी साम्राज्यवादी चौधरियों और उनके ज़ायनवादी लठैत इज़राइल द्वारा मध्य-पूर्व में पिछले डेढ़ साल से जारी फ़िलिस्तीनीयों का नरसंहार इसी बात का सबूत है।

इज़राइल द्वारा ईरान पर हमला और फिर ईरान की मुँहतोड़ जवाबी कार्रवाई मध्य-पूर्व को और यहाँ तक कि दुनिया को एक बड़े युद्ध की दहलीज़ तक लेकर गयी। ईरान पर अमेरिकी प्रतीकात्मक हमले के बाद अचानक अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा युद्धविराम की घोषणा कर दी गयी। इतना तय है कि इज़राइल अपने बूते और बिना अमेरिकी प्रत्यक्ष सहायता के वैसे भी इस सैन्य अभियान में

(पेज 8 पर जारी)

विश्व की "चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था" के शोर के पीछे की सच्चाई

• ध्रुव

पिछले दिनों भारत की अर्थव्यवस्था और ग़रीबी को लेकर दो आँकड़े जारी हुए। पहले नीति आयोग के सीईओ बीवीआर सुब्रमण्यम ने दावा किया कि भारत ने जापान को पीछे छोड़कर दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था का दर्जा हासिल कर लिया है। यह दावा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की अप्रैल 2025 की वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक की रिपोर्ट पर आधारित है जिसमे अनुमान लगाया गया है कि भारत की नॉमिनल जीडीपी 4.187 ट्रिलियन डॉलर हो गयी है जो जापान की अनुमानित जीडीपी 4.186 ट्रिलियन डॉलर से अधिक है। वहीं दूसरी तरफ विश्व बैंक ने जून 2025 की रिपोर्ट में बताया कि भारत में अत्यधिक ग़रीबी की दर 2011-12 के मुकाबले 2022-23 में 27.1% से घटकर 5.3% हो गयी है। इस रिपोर्ट के अनुसार 2011-12 में 34.4 करोड़ लोग अत्यधिक ग़रीबी में जी रहे थे जिसमें से 17.1 करोड़ ग़रीबी रेखा से बाहर निकल चुके हैं। इन आँकड़ों के जारी होने के बाद मोदी सरकार का सूचना तन्त्र और पूरा गोदी मीडिया सरकार का गुणगान करने में जुट गये हैं। मुख्यधारा की मीडिया ने इसे भारत की आर्थिक प्रगति और मोदी सरकार की नीतियों की सफलता के रूप मे प्रचारित किया। लोगों के बीच यह बात फैलायी जा रही है कि मोदी सरकार की नीतियों की वजह से देश में ग़रीबी कम होती जा रही है। लेकिन आम मेहनतकश और मज़दूर आबादी इन आँकड़ों के पीछे की सच्चाई को अपनी ज़िन्दगी से ही समझ सकते हैं।

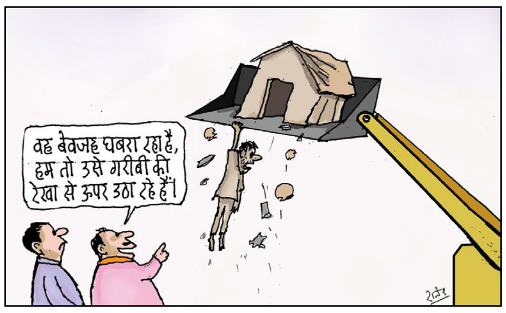
वह बेवजह घबरा रहा है, हम तो उसे गरीबी की रेखा से ऊपर उठा रहे हैं।

सबसे पहली बात यह है कि जीडीपी का बढ़ना किसी भी देश की आर्थिक स्थिति के ठीक होने का सूचक नहीं है। क्योंकि इससे इस बात का पता नहीं चलता कि देश में पैदा होने वाली कुल सम्पदा का कितना हिस्सा देश के बड़े धनपशु हड़प लेते हैं और देश की आम मेहनतकश जनता की स्थिति क्या है? पिछले दिनों

(पेज 14 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

साम्राज्यवाद आज भी एक काग़ज़ी बाघ है!

(पेज 8 से आगे)

साम्राज्यवाद अपने पतित होते वर्चस्व को रोकने के लिए मध्य-पूर्व सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में युद्ध, नरसंहार, बेपनाह हिंसा का सहारा लेने से बाज़ नहीं आने वाला है। मध्य-पूर्व में चल रही मौजूदा उथल-पुथल का असर न सिर्फ़ उस क्षेत्र में होगा बल्कि तेल व गैस का भण्डार होने की वजह से उस क्षेत्र मे अस्थिरता का असर समूचे विश्व की अर्थव्यवस्थाओं पर होना लाज़िमी है। साथ ही यह उथल-पुथल, अनिश्चितता और अस्थिरता जनबग़ावतों की ज्वाला को भी भड़काने का काम करेगी।

इतना तय है कि साम्राज्यवाद आज पहले से ज़्यादा कमज़ोर है और आज भी एक कागज़ी बाघ ही है। इसका अर्थ तात्कालिक तौर पर साम्राज्यवाद की ताक़त को कम करके आँकना नहीं है। यह केवल इस बात की अभिव्यक्ति है कि दुनिया भर में जनता का बहुलांश आज अमेरिकी साम्राज्यवाद और आम तौर पर साम्राज्यवाद से नफ़रत करता है। दूसरी ओर, अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा विश्व साम्राज्यवाद के आन्तरिक संकट को बढ़ा रही है। बढ़ती अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा दरअसल आज के दौर में इस कमज़ोरी को ही चिन्हित कर रही है। ऐसी स्थिति में माओ के शब्दों में जो ताक़तें बड़ी होती हैं, वे छोटी हो जाती हैं, और जो ताक़तें छोटी होती हैं, वे बड़ी हो जाती हैं क्योंकि उनके पास जनता का समर्थन होता है। साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा के तीखे होने और फिर उसके युद्धों में परिणत होने के साथ अलग-अलग देशों में क्रान्तिकारी हस्तक्षेप की सम्भावनाएँ भी जन्म ले सकती हैं। हालाँकि बिना क्रान्तिकारी हिरावल के इन सम्भावनाओं को वास्तविकता में तब्दील नहीं किया जा सकता। आज का प्रमुख कार्यभार यही है कि जो ताक़तें छोटी हैं, उन्हें जनता को अपने पक्ष में जीतकर, उनके सामने मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था का एक वैज्ञानिक और व्यावहारिक विकल्प पेशकर और समाजवाद के रूप में साम्राज्यवाद से मुक्ति के स्थायी रास्ते को जनता के सामने पेश करके अपने आपको बड़ा करना होगा। इसलिए दुनिया भर में मज़दूरों-महनतकशों को आज अपनी शक्तियों को संचित करना होगा और अपने-अपने देशों में क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी के निर्माण के कार्यभार को और गम्भीरता और तत्परता के साथ पूरा करना होगा जो कि इन क्रान्तिकारी प्रक्रिया में जनउभारों और जनान्दोलनों को सही नेतृत्व दे सके। स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद का एक-एक दिन मानवता के लिए ज़्यादा से ज़्यादा तबाही और बरबादी का सबब बनता जा रहा है। इसलिए साम्राज्यवाद के ख़ात्मे के बगैर दुनिया में अमन, चैन, खुशहाली नहीं हो सकती है। इज़रायल और फिर अमरीका द्वारा ईरान पर हमला दरअसल साम्राज्यवादी विश्व के अन्तरविरोधों को ही उजागर करता है। इसलिए दुनिया भर की मेहनतकश अवाम को आज साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष को तेज़ करना होगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल डाक से न पहुँचने की शिकायतों के बारे में

हमें 'मज़दूर बिगुल' के कई नियमित पाठकों की ओर से अक्सर ऐसी शिकायतें मिल रही हैं कि अख़बार की प्रति उन्हें मिल ही नहीं रही है या अनियमित मिल रही है। ऐसे साथियों से आग्रह है कि वे एक बार अपने निकटतम डाकघर में लिखित शिकायत दर्ज करायें और उसकी प्रति हमें भी ईमेल या व्हाट्सएप पर भेज दें, ताकि हम जिस डाकघर से अख़बार पोस्ट करते हैं, वहाँ भी शिकायत दर्ज करा सकें।

पिछले काफ़ी समय के अनुभव और डाक विभाग के ही अनेक कर्मचारियों व अधिकारियों से बात करने के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह सरकार जानबूझकर डाक विभाग की जनसेवाओं को नष्ट कर रही है ताकि इसके भी बड़े हिस्से को निजीकरण की ओर धकेला जा सके। भारत जैसे विशालकाय देश में, सीमित संसाधनों और तमाम दबावों के बावजूद लम्बे समय तक काफ़ी ज़िम्मेदारी और विश्वसनीयता के साथ काम करने वाली एक बेहद ज़रूरी जनसेवा को व्यवस्थित ढंग से बरबाद किये जाने के नतीजे हम लगातार देख रहे हैं। एक तरफ़ सेवाओं के दाम बढ़ाये जा रहे हैं, दूसरी ओर नयी भर्तियाँ नहीं करने, ठेकाकरण बढ़ाने और डाकिये सहित तमाम कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाते जाने से भी सेवाएँ प्रभावित हो रही हैं।

'बिगुल' जैसे जनपक्षधर पत्र-पत्रिकाओं और हमारे पाठकों के लिए इससे कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं लेकिन हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक अख़बार पहुँचता रहे। इसमें हमें आपका भी सहयोग चाहिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं।

बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016
फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
मूल्य : एक प्रति – 10/- रुपये
वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

रेखा गुप्ता सरकार दिल्ली में मज़दूरों की बस्तियों पर बेरहमी से चला रही है बुलडोज़र!

काग़ज़ों पर आवास का अधिकार और ज़मीन पर बुलडोज़र!!

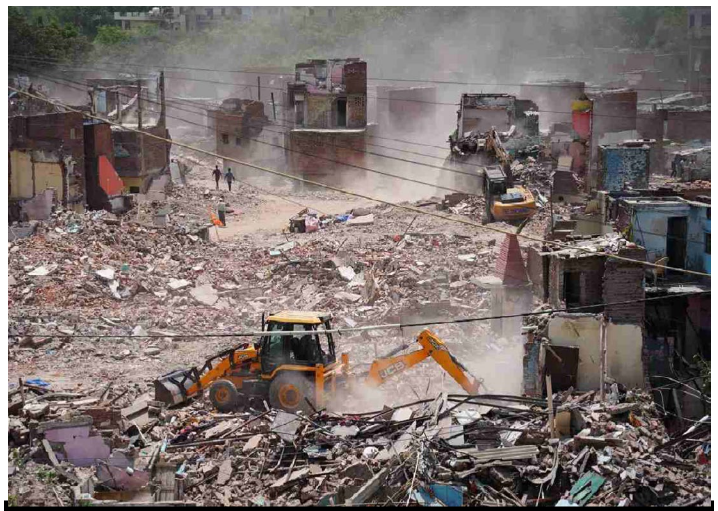

मेहनतकशों को समझना होगा कि आवास का संकट पूँजीवादी व्यवस्था की पैदाइश है!

● सनी

दिल्ली में भाजपा सरकार ग़रीबों की बस्तियों को तेज़ी से तोड़ने की योजना लागू कर रही है। विधानसभा चुनावों से पहले भाजपा ने 'जहाँ झुग्गी वहाँ मकान' का वायदा किया था, लेकिन मोदी के हर खाते पन्द्रह-पन्द्रह लाख वाली बात की तरह यह भी जुमला ही निकला। दिल्ली सरकार ने अपने कार्यकाल के 100 दिन पूरे होने पर यमुना नदी सफ़ाई, जल-भराव और प्रदूषण को रोकने और शहरी विकास के लिए ख़ुद की गोदी मीडिया से भी ज़्यादा तारीफ़ की। लेकिन यह सब मृग-मरीचिका है क्योंकि प्रदूषण में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं आया है और दिल्ली में मानसून आगमन पर पहली और दूसरी बारिश में ही दिल्ली की सड़कों पर जल-भराव हो गया है और "साफ़" यमुना अभी केवल भाजपा के नेताओं की ज़ुबाँ पर ही है! एक चीज़ जो रेखा गुप्ता सरकार ने की है वह है दिल्ली की झुग्गियों को तोड़ने का काम। दिल्ली में जगह-जगह झुग्गीवासियों को एक दिन पहले या दो-तीन दिन पहले झुग्गी खाली करने का ऑर्डर देकर भारी पुलिस बल की मौजूदगी में झुग्गियाँ तोड़ी गयी हैं। वज़ीरपुर, मद्रासी कैम्प, वज़ीराबाद, जेलर बाग़, भूमिहीन कैम्प से लेकर कई जगह झुग्गी तोड़ने की कार्रवाई दिल्ली सरकार के निर्देश से हो रही है। कहीं नाला सफ़ाई, कहीं सड़क बनाने और कहीं रेलवे की ज़मीन खाली करवाने के नाम पर झुग्गियाँ तोड़ी जा रही हैं। इस कवायद को दिल्ली के अमीरों और मध्य वर्ग के एक हिस्से का भी समर्थन हासिल है जो झुग्गीवालों द्वारा दिल्ली के "सौन्दर्य" पर बट्टा लगने पर नाखुश रहता है। झुग्गियों की गन्दगी और उनमें पलने वाली बीमारियों से चिन्तित अमीर इस बला को शहर से दूर कर देना चाहते हैं लेकिन सच तो यह है कि झुग्गियों में पनप रही ऐसी बीमारियों से वे भी बच नहीं पाते हैं! यह एक ऐसा श्राप है जिससे पूँजीपति बच नहीं सकते चाहे वे मज़दूरों की रिहाइश को शहर से कितना ही दूर धकेलने की कोशिश करें! मज़दूरों की ये बस्तियाँ, जहाँ ऐसी बीमारियाँ पलती हैं जिनका इलाज सालों पहले खोज लिया गया था, रह-रहकर अमीरों को भी अपनी चपेट में ले लेती हैं। मज़दूर वर्ग के शिक्षकों में से एक फ्रेडरिक एंगेल्स, अपनी रचना 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा' में इसी सच्चाई पर रोशनी डालते हुए लिखते हैं:

> "हैजा, टाइफ़स, टाइफाइड बुखार, चेचक तथा अन्य विनाशकारी बीमारियाँ मज़दूर वर्ग के इन मोहल्लों की प्रदूषित हवा तथा ज़हरीले पानी में अपने रोगाणु फैलाती हैं। यहाँ रोगाणु कभी पूरी तरह नहीं मरते और अपने लिए परिस्थितियाँ अनुकूल होते ही वे महामारियों का रूप ग्रहण कर लेते हैं और फिर अपनी जन्मस्थली के पार पहुँचते हुए शहर के उन अधिक हवादार और आरोग्यकर स्थानों में फैल जाते हैं जहाँ पूँजीपति बसे हुए हैं। पूँजीवादी शासन के लिए मज़दूर वर्ग के बीच महामारियों को पैदा होने देना एक ऐसी अय्याशी होगी जिसकी सज़ा से वह बच नहीं सकता। उसके परिणाम उल्टे पूँजीपतियों पर भी मार करते हैं, यमराज उनके बीच उतना ही रौद्र रूप धारण करता है जितना मज़दूरों के बीच।" (एंगेल्स, 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा')

कोरोना काल में एंगेल्स का यह कथन बिलकुल सटीक सिद्ध हुआ था। महामारियों और झुग्गी बस्तियों में साफ़-सफ़ाई की समस्या भी व्यवस्था द्वारा जनित है लेकिन इसका ख़ामियाज़ा आम तौर पर मज़दूरों को ही उठाना पड़ता है। एक तरफ़ सरकार झुग्गीवासियों के लिए आवास की सुविधा उपलब्ध नहीं कराती है और दूसरे तरफ़ उनके घरों को उजाड़ती रहती है। वैकल्पिक आवास की सुविधा मुहैया किये बिना लोगों को बेघर न करने सम्बन्धी सुप्रीम कोर्ट के कई फ़ैसलों और सरकारी क़ानूनों की बातें कागज़ी और खोखली सिद्ध होती हैं। झुग्गियों को समय-समय पर तोड़ने का फ़रमान जारी किया जाता रहता है। विपक्षी दल ऐसे समय में अपने वोट बैंक को सुनिश्चित करने के लिए ग़रीबों के पक्ष में बयानबाज़ी करते हैं। इस बार भी यही हुआ। दिल्ली में झुग्गियों को तोड़ने के बाद फ़ासीवादी भाजपा सरकार की मुख्यमन्त्री रेखा गुप्ता ने अपने फ़ासीवादी गुरुओं से ही सीख लेते हुए कहा कि दिल्ली में कोई भी झुग्गी नहीं टूटी है! 'जहाँ झुग्गी वहाँ मकान' केवल जुमला ही रहा और भाजपा ने इस जुमले से झुग्गीवासियों से वोट भी हासिल किये। लेकिन अब 'जहाँ झुग्गी वहाँ बुलडोज़र' के नारे पर रेखा गुप्ता अमल करने में लगी हुई हैं।

झुग्गियों को तोड़ा जाना वैसे कोई नयी बात नहीं है; दिल्ली, चेन्नई, कोलकाता से लेकर मुम्बई जैसे महानगरों में यह समय-समय पर होता रहता है। लगातार फैलते हुए शहरों से झुग्गियों को शहर के मध्य से ध्वस्त कर मज़दूरों को शहर के किनारे बसाया जाता है। दिल्ली में मेट्रो विहार, नरेला से लेकर बवाना जे जे कॉलोनी, मंगोलपुरी तक कई कॉलोनियाँ पहले भी दिल्ली में "विकास" के नाम पर उजाड़कर बसायी गयी हैं। कुछ मेट्रो के लिए, तो कुछ निजी अस्पतालों के लिए, तो कुछ मॉल, फैक्ट्रियों या अमीरों की कॉलोनियों के लिए। दिल्ली में झुग्गियों में रहने वाली आबादी को विस्थापित कर शहर के किनारे बसे औद्योगिक क्षेत्रों में धकेलने की योजना को कांग्रेस और आम आदमी पार्टी की सरकारें भी अमल में लाती रही हैं लेकिन जिस गति से और बेशर्मी के साथ भाजपा सरकार यह करने में लगी है वह अभूतपूर्व है। 2009 में कॉमनवेल्थ खेलों के लिए झुग्गियाँ तोड़ने और 2015 में शकूर बस्ती में झुग्गियों को तोड़ने के दौरान हुई एक बच्ची की मौत ने ग़रीबों के प्रति सरकारों का रुख ख़बर बना था लेकिन इसके बाद भी यह हर साल जारी रहा। यह अकारण नहीं है। इसके कारण व्यवस्था-जनित हैं। एंगेल्स 'आवास का प्रश्न' पुस्तिका में मज़दूरों के शहरों में गाँव से उजाड़कर बसने और लगातार विकसित होते शहरों में उजड़ने की प्रक्रिया को पूँजीवाद में शहरों की आम प्रवृत्ति बताते हैं:

> "एक ओर देहाती श्रमिक सहसा बहुत बड़ी तादाद में बड़े शहरों की ओर खिंचे आते हैं जो औद्योगिक केन्द्र बन जाते हैं; दूसरी ओर इन पुराने शहरों में मकान-निर्माण व्यवस्था बड़े पैमाने के नये उद्योग और उसी हिसाब से बढ़ने वाले यातायात के अनुरूप नहीं रह जाती। सड़कें चौड़ी की जाती हैं, नयी सड़कें बनायी जाती हैं, ठीक शहरों के बीच रेलवे लाइनें बिछायी जाती हैं। ठीक उसी समय, जब मज़दूरों की भारी भीड़ शहरों में पहुँचती रहती है, मज़दूर बस्तियाँ बहुत बड़े पैमाने पर गिरा दी जाती हैं।" (एंगेल्स, 'आवास का प्रश्न')

आगे एंगेल्स कहते हैं:

> "बड़े आधुनिक शहरों के विस्तार के कारण उनके कुछ भागों में, विशेष रूप से केन्द्रीय भागों में ज़मीन को कृत्रिम रूप से बढ़ाये गये मूल्य, अक्सर अपरिमित रूप से बढ़े हुए मूल्य पर बेचा जाता है; इन इलाक़ों में बनी इमारतें इस मूल्य को बढ़ाने के बजाय उसे घटाती हैं क्योंकि ये इमारतें परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप नहीं रह जातीं। उन्हें गिरा दिया जाता है तथा उनकी जगह नयी इमारतें बनायी जाती हैं। यह सर्वोपरि केन्द्रीय इलाक़ों में स्थित मजदूरों के मकानों के साथ होता है, जिनके किराये अधिकतम भीड़ के बावजूद एक निश्चित अधिकतम सीमा से या तो कभी बढ़ ही नहीं सकते या फिर बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं। ये मकान गिरा दिये जाते हैं और उनकी जगह पर दुकानें, गोदाम तथा सार्वजनिक इमारतें खड़ी की जाती हैं।" (एंगेल्स, 'आवास का प्रश्न')

पूँजीवाद में एक तरफ़ गाँव से शहरों की ओर प्रवास जारी रहता है और दूसरी तरफ़ शहर फैलते रहते हैं जिसमें शहरी "विकास" हर-हमेशा ग़रीबों की बस्तियों को उजाड़ने की क़ीमत पर किया जाता है। जो सीमित वैकल्पिक आवास मज़दूरों को मुहैया कराये जाते हैं वे मज़दूरों के रोज़गार के स्थान से दूर तथा अस्पताल, शिक्षा, पानी, बिजली जैसी सुविधाओं से रिक्त होते हैं। दिल्ली में बवाना और नरेला में झुग्गियों को उजाड़कर बसायी झुग्गी-झोंपड़ी क्लस्टर के मकान झुग्गियों से भी बदतर जीवन स्थिति देते हैं। झुग्गी-मुक्त शहर के दावे झूठे और बेमानी हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार ही भारत में 6.5 करोड़ झुग्गीवासी थे और क़रीब एक लाख झुग्गियाँ थीं। ये झुग्गियाँ पटरी किनारे, नाले किनारे या शहर के कोनों में बसी होती हैं जहाँ बिजली, पानी, सीवर, शौचालय, सड़क से लेकर साफ़-सफ़ाई की समस्या हमेशा रहती है। हालाँकि कई रिपोर्टें बताती हैं कि यह आँकड़ा सटीक नहीं था और असल संख्या 14-15 करोड़ है। आज यह संख्या इससे अधिक ही है। यही झुग्गियाँ और सरकार द्वारा मज़दूरों को दिये गये वैकल्पिक आवास बीमारियों का गढ़ हैं जहाँ संविधान और अकादमिक मानकों से मानव अधिकार की परिभाषा भी यहाँ आते-आते दम तोड़ने लगती है। यह हाल तब है जब 2011 में जनगणना के अनुसार ही एक करोड़ से ज़्यादा मकान ख़ाली थे। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार ख़ाली मकानों की संख्या आज 2 करोड़ से भी अधिक है। क्या जिस देश में 20 लाख लोग बेघर हों और करोड़ों लोग झुग्गियों में रहने को मजबूर हों तो वहाँ खाली पड़े मकानों को ज़रूरतमन्द लोगों को नहीं दिया जा सकता है? इस सवाल का जवाब है: नहीं! जब तक पूँजीवादी उत्पादन पद्धति मौजूद रहेगी यह नहीं किया जा सकता है। मकान का किराया राजनीतिक अर्थशास्त्र के नियमों से संचालित होता है। मकान मालिक किरायेदार से मकान के अस्थायी इस्तेमाल के लिए एक राशि लेता है। यह सामान्य माल विनिमय है यानी मालिक मकान और उसके उपभोक्ता किरायेदार के बीच होने वाला विनिमय। एंगेल्स बताते हैं कि मकान के किराये में, ज़मीन का किराया, निर्माण पूँजी का ब्याज, मरम्मत आदि का ख़र्च शामिल होता है। एंगेल्स कहते हैं कि: "मकान-किराया…जिन चीज़ों को लेकर बनता है, वे इस प्रकार हैं-1) एक हिस्सा जो ज़मीन के किराये का होता है, 2) एक हिस्सा जो निर्माण पूँजी पर ब्याज का होता है, जिसमें निर्माता का मुनाफ़ा भी शामिल है, 3) एक हिस्सा जो मरम्मत तथा बीमे पर जाता है, 4) एक हिस्सा जिससे मुनाफ़ा समेत निर्माण पूँजी का, उस हिसाब से जिस हिसाब से मकान का धीरे-धीरे मूल्य-ह्रास होता है, वार्षिक प्रतिशोधन करना पड़ता है।" (एंगेल्स, 'आवास का प्रश्न')

ऐसे में यह सोचना कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में मकान का मालिक अपनी निर्माण पूँजी पर ब्याज, मरम्मत ख़र्च और ज़मीन का किराया छोड़ देगा शेखचिल्ली का सपना होगा। मज़दूरों का शहरों में प्रवास उनके लिए बनाये गये मकानों के अनुपात में हमेशा ज़्यादा होता है। एंगेल्स यह भी कहते हैं कि जब मकान का किराया मालिक का अधिकार ही नहीं बल्कि "कर्त्तव्य" हो तब मज़दूरों की रिहाइश की समस्या को सहज ही समझा जा सकता है। आवास की कमी, गन्दी झुग्गी-बस्तियों की बसाहट और बेघर लोगों का सड़कों, रैन बसेरों और पुलों के नीचे सोने का कारण मौजूदा सामाजिक ढाँचे में है। एंगेल्स बताते हैं:

> "मज़दूर बड़े शहरों में बड़े समूहों में उससे ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से ठूँसे जाते रहते हैं जिस रफ़्तार से विद्यमान परिस्थितियों में उनके लिए मकान बनाये जाते हैं; जिसमें इस कारण गन्दे से गन्दे बाड़ों तक के लिए हमेशा किरायेदार मिल जायेंगे; और जिसमें अन्ततः मकान मालिक को पूँजीपति की हैसियत से यह अधिकार ही नहीं है अपितु प्रतियोगिता के कारण उसका कुछ

(पेज 4 पर जारी)

ग्रेटर नोएडा में बिजली संकट को लेकर एक बड़े जनआन्दोलन की तैयारी

हिण्डन नदी के किनारे बसे नोएडा-ग्रेटर नोएडा में लाखों लोग भीषण गर्मी में बिना बिजली के रहने को मजबूर!

ग्रेटर नोएडा के कुलेसरा-लखनावली-सुत्याना की जनता के जुझारू विरोध-प्रदर्शन के बाद तत्काल बिजली की सुविधा हुई बहाल!

• आदित्य

पिछले साल 'मज़दूर बिगुल' के अगस्त और सितम्बर अंक में हमने बताया था कि कैसे हिण्डन नदी के किनारे नोएडा-ग्रेटर नोएडा के लाखों लोग अन्धकारमय ज़िन्दगी जीने को मजबूर हैं। हमने बताया था कि नोएडा-ग्रेटर नोएडा के विकास के दौरान औद्योगिक क्षेत्रों के विकास के लिए तो तमाम योजनाएँ तैयार थीं, लेकिन इसी प्रक्रिया में फैक्ट्रियों में काम करने वाले लाखों मज़दूरों के लिए कोई योजना नहीं थी। इसी का फ़ायदा छोटे कॉलोनाइज़रों और प्रॉपर्टी डीलरों ने उठाया और इन्होंने किसानों से सस्ते दामों पर ज़मीनें ख़रीद कर कॉलोनियाँ काटी तथा छोटे-छोटे प्लाट काटकर मज़दूरों को बेच दिये। इसी तरह की दो दर्जन से ज़्यादा कॉलोनियाँ हिण्डन नदी के दोनों तरफ बसी हैं। छिजारसी, चोटपुर, बहलोलपुर, पर्थला, खंजरपुर, सोरखा, ककराला इत्यादि नोएडा में तथा कुलेसरा, सुत्याना, लखनावली, जलपुरा आदि ग्रेटर नोएडा में ऐसे गाँव हैं जहाँ कई लाख मेहनतकश परिवार रह रहे हैं। इन कॉलोनियों में किसी प्रकार की कोई बुनियादी सुविधा नहीं है। सड़क, नाली, पार्क, बच्चों के लिए खेल के मैदान आदि जैसी सुविधाएँ तो दूर, यहाँ बिजली, साफ़ पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी मौजूद नहीं है।

आपको बताते चलें कि उपर्युक्त तमाम जगहों पर बिजली का कनेक्शन नहीं है और लोग कुछ जुगाड़ करके या सोलर पैनल के सहारे बिजली का इन्तज़ाम कर रहे हैं। एक बड़े हिस्से में बिजली माफियाओं और स्थानीय बाहुबलियों का बोलबाला है, जो इलाक़ों से उगाही करके बिजली विभाग के भ्रष्ट पदाधिकारियों के साथ मिलकर बिजली की सप्लाई कराते हैं।

कुलेसरा, सुत्याना व लखनावली में एक सही संघर्ष की शुरुआत

इन्हीं इलाक़ों में कुलेसरा, सुत्याना व लखनावली भी शामिल है जहाँ बिजली की भयंकर समस्या है। यहाँ की कॉलोनियों में पिछले साल 'एकता संघर्ष समिति' के नेतृत्व में बिजली समस्या को लेकर पहली बार सही तरीक़े से संघर्ष शुरू हुआ था, जिसका 'नौजवान भारत सभा' भी पूरा समर्थन कर रहा है और लगातार इस संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। पिछले साल सितम्बर में 'एकता संघर्ष समिति' के ही नेतृत्व में एक महापंचायत बुलायी गयी थी, जिसमें हज़ार से भी ज़्यादा लोगों ने भागीदारी की थी।

इस साल जैसे ही गर्मी का मौसम शुरू हुआ, इलाक़ों में बिजली की समस्या फिर से शुरू हो गयी। कई जगहों पर लोग डेढ़ महीने तक बिना बिजली के रहने को मजबूर थे। 'एकता संघर्ष समिति' के नेतृत्व में बीते 22 मई को एक बड़ा प्रदर्शन किया गया था। इस प्रदर्शन को बड़े स्तर पर जनता का समर्थन मिला और सैंकड़ो की संख्या में लोग अपने कामों से छुट्टी करके इस प्रदर्शन में शामिल हुए। प्रदर्शन में कुलेसरा, लखनावली और सुत्याना की जनता को एक बड़ी जीत मिली और प्रशासन को माँगपत्रक की 5 में से 4 माँगों को मानना पड़ा। प्रदर्शन के बाद जनता ने बड़ी रैली निकाल कर अपनी जीत का जश्न मनाया।

प्रदर्शन को रोकने की हर कोशिश नाकाम!

इस प्रदर्शन को रोकने के लिए पुलिस-प्रशासन, बिचौलिये और स्थानीय बाहुबलियों ने, जो इस प्रदर्शन को सफल होते नहीं देखना चाहते थे, अपना पूरा ज़ोर लगा दिया था। प्रदर्शन को रोकने के लिए प्रदर्शन शुरू होने के दो दिन पहले से ही नेतृत्व के साथियों पर पुलिस द्वारा दबाव बनाना शुरू कर दिया गया था। उनपर फ़र्ज़ी धाराएँ लगायी जा रही थीं और कुछ लोगों द्वारा फ़र्ज़ी शिक़ायत भी की गयी। लेकिन जब इसका कुछ असर नहीं हुआ तो पुलिस ने बड़ी संख्या में इलाक़े में आकर डराने-धमकाने की कोशिश की। हालाँकि लोगों की एकता के आगे पुलिस को झुकना पड़ा। प्रदर्शन नहीं होने देने के लिए तमाम इलाक़ों में अचानक से बिजली भी आ गयी, जहाँ पिछले डेढ़ महीने से बिजली नहीं थी! लेकिन जनता प्रशासन के इस झाँसे में नहीं आयी और अगले दिन प्रदर्शन के लिए निकल पड़ी।

पुलिस ने प्रदर्शन के दिन भी प्रदर्शन को रोकने के लिए डराने-धमकाने से लेकर दमन तक का सहारा लिया। लेकिन जनता की जुझारु एकजुटता के आगे नेतृत्व के साथियों को गिरफ़्तार करने की हर कोशिश नाकाम हो गयी और जनता ने पुलिस की गाड़ी से भी साथियों को बाहर निकाल लिया। इसके बाद इलाक़े के कुछ बिचौलिए और बाहुबली भी आकर बीच-बीच का समझौता करा कर प्रदर्शन ख़त्म करने की कोशिश में लगे थे, लेकिन जनता ने उन्हें भी बाहर का रास्ता दिखा दिया।

अब लगातार इन कॉलोनियों में बिजली आ रही है। स्थानीय बाहुबली और बिचौलियों द्वारा बिजली आपूर्ति बाधित करने की हर कोशिश नाकाम हो रही है। लोग लगातार संगठित हो रहे हैं। इस प्रदर्शन में प्रशासन को 5 में से 4 माँगे मानने को मजबूर होना पड़ा। पाँचवीं माँग बिजली कनेक्शन की माँग थी, जो सिर्फ़ डीएम के स्तर का मसला नहीं है। इसके लिए पहले ही एनजीटी और कोर्ट में कई केस चल रहे हैं। आगे बिजली कनेक्शन के लिए लोगों को बड़े प्रदर्शन के लिए तैयार किया जा रहा है, ताकि इसके ज़रिये क़ानून और न्यायपालिका पर भी दबाव बनाया जा सके। एक जुझारू जन-आन्दोलन के साथ ही क़ानूनी लड़ाई भी जीती जा सकती है।

क्यों मेहनतकश आबादी ही बिजली जैसी मूलभूत सुविधा से वंचित है?

दरअसल पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार-प्रशासन से लेकर धन्नासेठों-अमीरज़ादों की जमातों तक मेहनतकश आबादी को इन्सान समझा ही नहीं जाता। इनके लिए ये बस काम करने वाली चलती-फिरती मशीन हैं, 12-14 घण्टे मज़दूरी करने वाले ग़ुलाम हैं और इसलिए ये मज़दूरों को कीड़े-मकोड़ों की तरह जीने के लिए छोड़ देते हैं। सत्ता में चाहे किसी भी चुनावबाज़ पार्टी की सरकार आ जाये, ये सभी तमाम अमीरों और पूँजीपतियों से चन्दे लेते हैं और इसलिए जीतकर आने के बाद तन-मन-धन से उनकी ही सेवा में लगे होते हैं। लेकिन इनमें भी फ़ासीवादी भाजपा यह काम सबसे अधिक तत्परता के साथ करती है और उत्तर प्रदेश की योगी सरकार तो इसमें काफ़ी ज़्यादा माहिर है। इसी का फ़ायदा तमाम बिचौलिये, दलाल और बाहुबली उठाते हैं जो लोगों की मजबूरी का इस्तेमाल कर अपना निजी फ़ायदा निकालते हैं। इन इलाक़ों में तो स्थानीय बाहुबली भी भाजपा का ही सदस्य है।

कुल मिलाकर, बिजली कनेक्शन के लिए संघर्ष तो एक लम्बी लड़ाई की शुरुआत है। आने वाले समय में तो बिजली के अधिकार के अलावा पानी, आवास, सड़क, नाली, स्कूल, अस्पताल आदि तमाम बुनियादी अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा ताकि जो अपनी मेहनत और ख़ून-पसीने के बूते पूरी दुनिया चलाने का काम करते हैं, उन्हें और उनके परिवारों को भी एक बेहतर ज़िन्दगी मिल सके।

काग़ज़ों पर आवास का अधिकार और ज़मीन पर बुलडोज़र!!

(पेज 3 से आगे)

> हद तक यह कर्त्तव्य भी है कि वह अपने मकान से बेरहमी से अधिक से अधिक भाड़ा कमाये। इस तरह के समाज में आवास की कमी कोई संयोग की बात नहीं है, यह तो एक आवश्यक संस्थान भी है और उसे सेहत, आदि पर पड़ने वाले तमाम कुप्रभावों समेत तभी मिटाया जा सकता है जब पूरी की पूरी सामाजिक व्यवस्था के, जिससे वह जन्म लेती है, आधार का पूर्ण पुनर्गठन कर दिया जायेगा।" (एंगेल्स, 'आवास का प्रश्न')

शहर के उन भागों में जहाँ मज़दूरों को रोज़गार मिलता है या उन्हें नागरिक सुविधाएँ मिल सकती हैं वहाँ पक्के मकानों का किराया देना उनके लिए सम्भव नहीं होता है। इसलिए लोगों के लिए पक्के मकानों की ज़रूरत के बावजूद भी 2 करोड़ से ज़्यादा मकान ख़ाली हैं क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आवास की यह माँग प्रभावी माँग नहीं है। यही आवास के संकट का कारण है। झुग्गी-बस्तियाँ शहरी भूदृश्य के अँधेरे कोनों और दरारों में बसती रहती हैं जिन्हें सरकार समय-समय पर बेरहमी से तोड़ती रहती है।

आवास की समस्या का हल मौजूदा व्यवस्था के भीतर सम्भव नहीं है; इसके समाधान के लिए समूची सामाजिक व्यवस्था के आधार का पूर्ण पुनर्गठन करना होगा। एंगेल्स अपनी पुस्तिका 'आवास का प्रश्न' में यह सिद्ध करते हैं कि आवास की समस्या का हल केवल सामाजिक क्रान्ति के द्वारा ही हो सकता है और साथ ही आर्थिक और नैतिक तौर पर इस सवाल का व्यवस्था के भीतर हल निकलने की कोशिश कर व्यवस्था को संजीवनी देने का काम करने वाले निम्नबुर्जुआ प्रूदों के समर्थकों और बड़े पूँजीपति वर्ग के मानवतावादी समर्थकों के तर्कों की धज्जियाँ उड़ा देते हैं। एंगेल्स बताते हैं कि आवास समस्या को, वर्ग समाज के द्वारा पैदा शहर और गाँव के बीच की महान अन्तरवैयक्तिक असमानता को ख़त्म कर ही हल किया जा सकता है:

"वर्तमान समाज में उसे किसी भी अन्य सामाजिक प्रश्न की तरह हल किया जाता है- माँग तथा पूर्ति के धीरे-धीरे आर्थिक समतलन के द्वारा, एक ऐसे हल द्वारा जो प्रश्न को फिर बार-बार पैदा करता है और इसलिए जो कोई हल है ही नहीं। इस प्रश्न को सामाजिक क्रान्ति कैसे हल करेगी, यह चीज़ हर मामले की परिस्थितियों पर ही निर्भर नहीं करती, अपितु कहीं अधिक व्यापक प्रश्नों से भी जुड़ी हुई है जिनमें से एक प्रश्न शहर तथा देहात के बीच विरोध का उन्मूलन है।

"चूँकि भावी समाज के संगठन के लिए कोई काल्पनिक प्रणालियाँ रचना हमारा काम नहीं है, इसलिए यहाँ इस प्रश्न का विवेचन करना सर्वथा निरर्थक होगा। परन्तु एक चीज़ निश्चित है- बड़े शहरों में यह सारी "मकानों की कमी" दूर करने के लिए मकान पर्याप्त संख्या में मौजूद हैं बशर्ते उनका विवेकपूर्वक उपयोग किया जाये। यह स्वभावतः तभी हो सकता है जब मौजूदा मकान मालिकों के मकानों को हस्तगत करके मौजूदा गृहहीन मज़दूरों अथवा भीड़ भरे घरों में रहनेवाले मज़दूरों को उनमें बसा दिया जाये। सर्वहारा ज्यों ही राजनीतिक सत्ता हासिल कर लेगा, तब सामाजिक कल्याण के हितों से प्रेरित इस तरह का पग उठाना उतना ही सुगम होगा जितना आधुनिक राज्य द्वारा अन्य प्रकार के सम्पत्तिहरण तथा रिहायशी घरों को अपने अधिकार में किया जाना।" (एंगेल्स, 'आवास का प्रश्न')

सर्वहारा ने राजनीतिक सत्ता हासिल कर रूस में आवास प्रश्न को हल कर दिखाया। सोवियत रूस में आवास सामाजिक था और किराये बेहद कम रखे जाते थे। सबसे कम वेतन पाने वाले मज़दूरों को अक्सर केवल दो या तीन रूबल प्रति माह देने होते थे, जो उनकी आय का लगभग 2% होता था। इसके अलावा, एक कम आय वाले व्यक्ति को उसी जगह के लिए अधिक आय वाले व्यक्ति की तुलना में कम किराया देना पड़ता था। मार्च 1919 में आठवीं पार्टी कांग्रेस के कार्यक्रम में घोषणा की गयी कि: "आवास की समस्या को हल करने के लिए सोवियत सत्ता ने पूँजीपतियों की सारी सम्पत्ति को पूरी तरह से अधिग्रहित कर लिया है और उन्हें नगर सोवियतों को सौंप दिया है; इसने शहरों के बाहरी इलाकों से पूँजीपतियों के घरों में बड़े पैमाने पर मज़दूरों का पुनर्वास करवाया; इसने इन घरों में से सबसे अच्छे घरों को मज़दूरों के संगठनों को सौंप दिया है।"

सोवियत रूस में न झुग्गी थी और न ही लोग बेघर थे और सभी नागरिकों को आवास का अधिकार था। यह केवल सामाजिक क्रान्ति के दम पर ही अर्जित किया जा सका। आज हमारे देश, हमारे शहर में मज़दूरों की जो जीवन स्थिति है उसकी ज़िम्मेदारी इस सामाजिक-आर्थिक पूँजीवादी व्यवस्था की बनती है। आवास का अधिकार इस व्यवस्था के लिए रोज़गार के अधिकार की ही तरह एक ऐसा सवाल है जो उसके सीमान्तों को उजागर करता है यानी यह एक ऐसी माँग है जिसे पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में पूरा नहीं किया जा सकता है और बतौर हिरावल हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि हम पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा दिये गये इस वायदे को जनता के बीच उठायें और इस व्यवस्था का भण्डाफोड़ करें।

उत्तर प्रदेश में बिजली का निजीकरण किसके हक़ में?

• प्रसेन

उत्तर प्रदेश की योगी सरकार बिजली विभाग पर निजीकरण का बुलडोज़र चलाने की ठान चुकी है। बिजली कर्मचारियों के व्यापक विरोध प्रदर्शन के बावजूद योगी सरकार पूँजीपतियों के हक़ में अपने अटल इरादे को ज़ाहिर कर चुकी है। इसके लिये योगी सरकार एस्मा जैसे क़ानून का डण्डा और निलम्बन और बर्ख़ास्तगी जैसे हथकण्डे इस्तेमाल करने के लिए तैयार बैठी है। उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड (यूपीपीसीएल) दो प्रमुख बिजली वितरण निगमों (डिस्कॉम) - दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम (आगरा) और पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम (वाराणसी) का निजीकरण करने जा रही है। योगी सरकार की मंज़ूरी के बाद ऊर्जा विभाग ने यूपी पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड को इस योजना को लागू करने के लिए आदेश जारी कर दिया है। यह निर्णय उत्तर प्रदेश के 40 से अधिक ज़िलों को प्रभावित करेगा।

इतना ही नहीं, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ग्रामीण और शहरी इलाक़ों में बिजली की दरों में 40-45% वृद्धि का फ़ैसला लिया गया है। इस बढ़ोत्तरी के बाद बिजली जैसी बुनियादी ज़रूरत की चीज़ों का इस्तेमाल करना भी लोगों के लिए मुश्किल हो जायेगा। ज़ाहिर है कि बिजली की दरों के बढ़ने से मँहगाई में भी बढ़ोत्तरी होगी क्योंकि जिन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में बिजली का इस्तेमाल होता है, उनकी लागत तत्काल बढ़ जायेगी। कुल मिलाकर कहा जाये तो एक तरफ़ निजीकरण की मार और दूसरी ओर बिजली की बढ़ी हुई दरों के वार से उत्तर प्रदेश की योगी सरकार आम जनता पर दोहरा हमला कर रही है।

वास्तव में आज के समय में बिजली हर इन्सान की ऐसी बुनियादी ज़रूरत बन चुकी है, जिसके बग़ैर किसी की भी पूरी दिनचर्या ही अस्त-व्यस्त हो जायेगी। ज़ाहिर है कि वर्तमान समय में जीवन की ज़रूरतों का स्तर ऐसा है कि अब ढिबरी और लालटेन पर वापस नहीं लौटा जा सकता। हाँ! यह बात अलग है कि मोदी सरकार के 100 प्रतिशत विद्युतीकरण की घोषणा के बावजूद अभी भी ढिबरी और लालटेन की बाध्यता बनी हुई है। 24 घण्टे बिजली की आपूर्ति के लिए 'सौभाग्य' योजना शुरू की गयी लेकिन अभी भी बहुत से इलाक़ों में 12 घण्टे भी बिजली न मिल पाने का 'दुर्भाग्य' बना हुआ है! यानी अभी हर घर तक सुचारु रूप से 24 घण्टे निर्बाध बिजली की आपूर्ति भी सम्भव नहीं हुई थी कि सरकार ने बिजली का निजीकरण जनता पर थोप दिया। स्पष्ट है कि बिजली का निजीकरण मुट्ठी भर पूँजीपतियों के मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए किया जा रहा है और आम मेहनतकश आबादी पर इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा।

निजीकरण के इस निर्णय को लागू करने के मामले में कॉरपोरेशन बहुत जल्दी में है और दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम (आगरा) और पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम (वाराणसी) को औने-पौने दामों में निपटा देना चाहता है। राज्य विद्युत उपभोक्ता परिषद के अध्यक्ष अवधेश कुमार वर्मा ने बताया कि कॉरपोरेशन प्रबन्धन जिस टीए कम्पनी से निजीकरण का प्रस्ताव तैयार करा रहा है, वह अमेरिका में जुर्माने की दोषी है और उसे असंवैधानिक तरीक़े से नियुक्त किया गया है। पूर्वांचल और दक्षिणांचल को समाप्त करके पाँच नयी कम्पनियाँ बनायी गयी हैं। लेकिन पूर्वांचल और दक्षिणांचल के इक्विटी शेयर कैपिटल को कम करके आँका गया है। 6000 से 7000 इक्विटी शेयर कैपिटल मानकर दोनों बिजली कम्पनियों में प्रस्तावित पाँच नई बिजली कम्पनियों की कुल रिज़र्व बिड प्राइस को दो हज़ार करोड़ से नीचे रखा गया है ताकि आसानी से कॉरपोरेशन प्रबन्धन की मनचाही कम्पनियों को टेण्डर प्रक्रिया में हिस्सा लेने का मौक़ा मिल जाये। जबकि दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम की इक्विटी शेयर कैपिटल 25862 करोड़ और पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम की इक्विटी शेयर कैपिटल 28024 करोड़ है। दोनों की इक्विटी शेयर कैपिटल 53886 करोड़ है।

सरकार और कॉरपोरेशन का निजीकरण के पक्ष में कहना है कि ये दोनों बिजली वितरण निगम वर्षों से घाटे में चल रही थीं जिसका सीधा असर न केवल राज्य की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा था बल्कि उपभोक्ताओं को भी अनियमित आपूर्ति, बिलिंग समस्याओं और सेवा की गुणवत्ता में कमी जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। सरकार का कहना है कि निजीकरण से ये सारी समस्याएँ दूर हो जायेंगी और इसका सबसे ज़्यादा लाभ ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी इलाक़ों में देखने को मिलेगा।

यही नहीं, उत्तर प्रदेश सरकार ने तो बिजली के निजीकरण में सामाजिक न्याय और समानता तक को तलाश लिया है! सरकार का कहना है कि ऐसे नीतिगत फ़ैसलों को राजनीतिक चश्मे से देखने की ज़रूरत नहीं है। ज़रूरी यह है कि हम दीर्घकालिक "राष्ट्रीय" हित को प्राथमिकता दें। निजीकरण केवल आर्थिक सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और ऊर्जा समानता का एक माध्यम है। अब ज़ाहिर है कि जब बात "राष्ट्रीय" हित (पढ़ें : पूँजीपतियों के हित) की है इसलिए इसकी झण्डाबरदार योगी सरकार डण्डे के ज़ोर पर भी इसे पूरा करने के लिए कटिबद्ध है।

लेकिन आइये देखते हैं कि बिजली के निजीकरण में सरकार और कॉरपोरेशन के दावे की सच्चाई क्या है? और बिजली के निजीकरण में किसका हित है?

सबसे पहली बात यह है कि इन दोनों वितरण निगमों में घाटे का असली कारण सरकार द्वारा ऊँची लागत पर निजी क्षेत्र से बिजली की ख़रीदारी है। ग़ौरतलब है कि उत्तर प्रदेश 30000 मेगावॉट की ज़रूरत में से केवल 5000 मेगावॉट बिजली उत्पादन करता है। बाक़ी वह निजी क्षेत्र से ऊँची लागत पर ख़रीदता है। देश के स्तर पर बिजली के आधे से अधिक का उत्पादन टाटा, अदानी, जिन्दल, टोरेण्ट जैसे कारपोरेट घरानों द्वारा किया जा रहा है। एनटीपीसी की बिजली 4.78 रुपये प्रति यूनिट है, जबकि निजी क्षेत्र की बिजली 5.59 रुपये प्रति यूनिट में ख़रीदी जा रही है। घाटे का एक प्रमुख कारण यह है। सरकार अब वितरण को भी तेज़ी से निजी हाथों में सौंपने की तैयारी में है। केन्द्र सरकार द्वारा 20 जुलाई 2021 को 303758 करोड़ रुपये के बजट के साथ संशोधित वितरण क्षेत्र योजना (आरडीएसएस) शुरू की गयी थी। वास्तव में, वितरण के ढाँचे को उन्नत करने और जनता का फ़ायदा करने के नाम पर इस सरकारी योजना का मक़सद यह था कि इसमें जनता का पैसा ख़र्च किया जाये और पूँजीपतियों के लिए बिना एक धेला ख़र्च किये मुनाफ़ा बटोरने का रास्ता साफ़ किया जाये। वितरण प्रणाली में सुधार से देश में एटी एण्ड सी घाटा (यानी बिजली वितरण कम्पनियों को होने वाला कुल तकनीकी और वाणिज्यिक घाटा) 2011-12 के लगभग 22 प्रतिशत से घटकर 2021-22 में लगभग 17 प्रतिशत हो गया। लेकिन इस अवधि में बिजली की दरें हर साल बढ़ती गयीं। मतलब सुधार के फ़ायदे को उत्पादन और वितरण कम्पनियों ने हड़प लिया जबकि सरकार का दावा उपभोक्ताओं को फ़ायदा पहुँचाना था।

दूसरे, यूपीपीसीएल को वर्तमान में कुल 1.1 लाख करोड़ रुपये का घाटा हो रहा है जबकि वित्तीय वर्ष 2023-24 के लिए उपभोक्ताओं पर बकाया बिजली बिल 1.15 लाख करोड़ रुपये है। इससे साफ़ है कि घाटे की बात केवल लोगों को गुमराह करना है। वास्तव में, सरकार सस्ती दर पर जनता को बिजली मुहैया करने से पल्ला झाड़ते हुए अन्य विभागों की तरह इसे भी पूँजीपतियों के लूट के अड्डे में तब्दील करना चाहती है।

तीसरे, जहाँ भी बिजली का निजीकरण हुआ है वहाँ लोगों को बहुतेरी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उदाहरण के लिए टाटा समूह मुम्बई और दिल्ली में, टोरेण्ट समूह अहमदाबाद में, गोयनका समूह कोलकाता में बिजली आपूर्ति का काम करता है। कुछ शहरों में निजी कम्पनियाँ राज्य के स्वामित्व वाली वितरण कम्पनी की फ्रेंचाईज़ी के रूप में बिलिंग और संग्रह का काम करती हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के ठाणे जिले में भिवण्डी, कलवा, मुंब्रा और दिवा में टोरेण्ट समूह। लेकिन इन जगहों पर लोगों को कोई फ़ायदा नहीं हुआ। यहाँ बिजली की दरें देश में सबसे ज़्यादा ऊँची हैं। सरकार का दावा था कि वितरण में प्रतिस्पर्धा से बिजली सस्ती होगी लेकिन मुम्बई में टाटा और अम्बानी की प्रतिस्पर्धा में लोगों को कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

चौथे, सरकार का कहना है कि बिजली के निजीकरण से कर्मचारियों के रोज़गार पर कोई फ़र्क़ नहीं आयेगा। इसके लिए सरकार कर्मचारियों को उन्हीं सेवा शर्तों पर निजी कम्पनी में काम करने, किसी अन्य विभाग में ट्रांसफर करने या वीआरएस के विकल्प की बात करती है। लेकिन हक़ीक़त यह है कि जहाँ निजीकरण हुआ है, वहाँ निजीकरण के बाद बहुत से लोगों को बाहर कर दिया गया। स्थायी नौकरियों की जगह एक तिहाई से एक चौथाई वेतन पर संविदाकर्मियों की भर्ती की गयी। एक अनुमान के मुताबिक़ वितरण के निजीकरण से केवल तमिलनाडु में 20 हज़ार कर्मचारी प्रभावित होंगे। नौकरियों के घटने का असर छात्रों-युवाओं के भविष्य पर भी पड़ेगा। इतना ही नहीं, हाल ही में विभाग में जॉइनिंग करने वाले बहुत से कर्मचारी प्रोबेशन पीरियड में हैं। ऐसे में उत्तर प्रदेश में बिजली के निजीकरण से कर्मचारियों को अपनी नौकरी पर ख़तरा मंडराता दिख रहा है। इससे बहुत साफ़ है कि बिजली के निजीकरण से कर्मचारियों और आम मेहनतकश जनता को केवल नुक़सान होगा जबकि पूँजीपति वर्ग मालामाल होगा।

कुल मिलाकर देखा जाये तो केन्द्र और राज्य में बैठी फ़ासीवादी भाजपा सरकार का एक सूत्री कार्यक्रम है। अम्बानी, अदानी जैसे उद्योगपतियों के मुनाफ़े की हवस पूरी करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और बिजली आदि बुनियादी सुविधाओं को निजीकरण की भेंट चढ़ा देना। आज दीर्घकालिक आर्थिक संकट की मार झेल रहे पूँजीपति वर्ग की यही चाहत हो सकती है कि कम से कम लागत पर ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा पीटे। तो जनता के ख़ून-पसीने की कमाई से खड़े सार्वजनिक विभागों को पूँजीपतियों के लूट के अड्डे में बदल देने से अधिक सुगम रास्ता भला क्या हो सकता है? पूँजीपति वर्ग की लूट के रास्ते को सुगम बनाने के लिये भाजपा जैसी पार्टी का सत्ता में होना ज़रूरी है जो पूँजीपतियों के हक़ में जनता के खिलाफ़ नीतियाँ बनाये। लेकिन सूचना-संचार माध्यमों पर क़ब्ज़े और अपने फ़ासीवादी नेटवर्क के ज़रिये जनता को एकदम उलटी बात बताये। जो एक तरफ़ अपने को कर्मचारियों का सेवक बताये और दूसरी तरफ़ कर्मचारियों के अधिकार की हर आवाज़ को कुचल देने में कोई कोताही न बरते। जो जन-विरोधी नीतियों को "राष्ट्रहित" में ज़रूरी बताकर लोगों को गुमराह करे।

लेकिन इसका यह मतलब कत्तई नहीं है कि भाजपा के अलावा किसी अन्य चुनावबाज़ पार्टी से हम कोई उम्मीद रखें। वास्तव में, भाजपा अगर सत्ता से बेदखल हो भी जाये और किसी अन्य चुनावबाज़ पार्टी या किसी गठबन्धन की सरकार बन भी जाये तो भी इस स्थिति में कोई बहुत फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला क्योंकि भाजपा के अलावा अन्य चुनावबाज़ पार्टियाँ भी पूँजीपतियों के चन्दों से चलती हैं और उन्हीं के किसी न किसी हिस्से की नुमाइंदगी करती हैं।

आज के समय में बिजली लोगों की बुनियादी ज़रूरत है। बिजली का निजीकरण आम मेहनतकश जनता की जेब काटने के साथ-साथ बहुत-सी परेशानियों को पैदा करेगा। इसलिए जहाँ एक तरफ़ पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा ख़ुद पैदा किये संकट के दौर में पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों के रूप में निजीकरण की नीतियों और उसके भयानक नतीजों का व्यापक जनता में ख़ुलासा करना ज़रूरी हैं, वहीं बिजली के निजीकरण और आम तौर पर निजीकरण की नीतियों के विरुद्ध विभिन्न विभागों के कर्मचारियों समेत आम मेहनतकशों की व्यापक एकजुटता क़ायम करना भी ज़रूरी है।

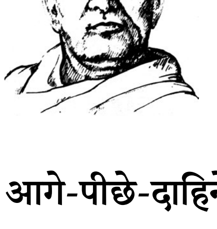

"हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार रहना चाहिए। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज़्यादा ज़रूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें आगे-पीछे-दाहिने-बायें दोनों हाथों से नंगी तलवारें नचाते हुए अपनी सभी रूढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना होगा।" – राहुल सांकृत्यायन

भारत में फ़िलिस्तीन के समर्थन में चलाया जा रहा है बीडीएस (BDS) अभियान!

फ़िलिस्तीन में इज़रायली सेटलरों द्वारा जारी जनसंहार इस सदी का सबसे बड़ा मानवीय संकट है और दुनियाभर में लोग इस क़त्लेआम के ख़िलाफ़ और फ़िलिस्तीनी मुक्ति-संघर्ष के समर्थन में सड़कों पर उतरकर प्रतिरोध कर रहे हैं।

ग़ज़ा में पैदा की गयी भुखमरी, बीमारी और मानवीय त्रासदी को रोकने के लिए कई देशों से इन्साफ़पसन्द लोग राहत सामाग्री लेकर समुद्र के रास्ते निकल पड़े थे, मगर वहाँ पहुँचने से पहले ही उनके जहाज़ (मैडलीन) को सेटलरों की फ़ौज ने बन्धक बना लिया और राहत सामग्रियाँ ज़ब्त कर ली, सड़क के रास्ते जा रहे लोगों को तो काफ़ी पहले ही अलग-अलग देशों की सीमाओं पर रोक दिया गया।

ट्रेंड्स
INDIAN PEOPLE IN SOLIDARITY WITH PALESTINE
बर्बरता के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ
BOYCOTT TATA Zudio
WE WILL NOT GO DOWN
EVERY CHILD EVERY BABY IN GAZA IS AN ENEMY ...NOT HAMAS

प्रतिरोध के इस रूप के अलावा कई देशों में फ़िलिस्तीन के समर्थन में बी.डी.एस. आन्दोलन चलाया जा रहा है। इस आन्दोलन का मक़सद है कि फ़िलिस्तीनियों को भी बाक़ी इन्सानों की तरह जीने का समान अधिकार मिलना चाहिए। उन्हें क़ैद करने वाली ताक़तों को पूरी दुनिया से अलग-थलग कर उन्हें कमज़ोर और ख़त्म किया जाये। दक्षिण अफ़्रीका के रंगभेद-विरोधी आन्दोलन से प्रेरित, बी.डी.एस आन्दोलन यह आह्वान करता है कि इज़रायल पर अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों का पालन करने के लिए दबाव डाला जाये।

भारत में भी बीडीएस अभियान को काफ़ी अच्छी प्रतिक्रिया मिल रही है। देश के कई राज्यों में फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन (IPSP) द्वारा यह अभियान चलाया जा रहा है। पटना, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, राजस्थान, हरियाणा समेत कई अन्य जगहों पर इस अभियान के तहत गलियों-मुहल्लों में व्यापक पर्चा वितरण किया जा रहा है, घर-घर जाकर लोगों को फ़िलिस्तीन के संघर्ष से अवगत कराया जा रहा है। इज़रायली ज़ायनवादियों द्वारा की जा रही बर्बरता के पीछे के कारणों को बताते हुए लोगों से यह अपील की जा रही है कि वे 'बीडीएस' अभियान के साथ जुड़ें और इज़रायली सेटलर प्रोजेक्ट की मददगार कम्पनियों का हर रूप में पूर्ण बहिष्कार करें।

दिल्ली के करावल नगर, खजूरी, शाहबाद देरी, पुरानी दिल्ली इलाक़े के साथ विश्वविद्यालय कैम्पसों में भी बीडीएस अभियान से लोगों को जोड़ा जा रहा है और अलग-अलग जगहों पर प्रदर्शन आयोजित करके साम्राज्यवादी मीडिया द्वारा फैलाये जा रहे झूठे प्रचार का पर्दाफ़ाश किया जा रहा है। लोगों के बीच इन अभियानों के बढ़ते असर को देखकर पुलिस प्रशासन द्वारा लगातार इसे रोकने की कोशिश की जा रही है, कभी डरा-धमकाकर तो कभी फ़र्ज़ी मुक़दमे लगाकर!

पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न ज़िलों जैसे कि गोरखपुर, इलाहाबाद, बनारस, मऊ और अम्बेडकरनगर में भी जब फ़िलिस्तीन की मुक्ति के समर्थन में नियमित पर्चा वितरण, नुक्कड़ सभाओं , पोस्टर इत्यादि के माध्यम से बात पहुँचायी जा रही है। फ़ासीवादी योगी सरकार को यह प्रदर्शन फूटी आँखों नहीं सुहा रहे हैं। अपने चरित्र के अनुरूप ही इन भारतीय फ़ासीवादियों की भी इज़रायली ज़ायनवादी-फ़ासिस्टों से एकता बनती है और इसी वजह से पहले ही योगी सरकार ने उत्तर प्रदेश में फ़िलिस्तीन के समर्थन में कोई प्रदर्शन आदि न होने देने की बात कही थी। इसके बावजूद तमाम दमनात्मक कार्रवाइयाँ सहते हुए भी 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' के कार्यकर्ता लोगों के बीच बीडीएस अभियान को लोकप्रिय बनाने और सच को लोगों तक पहुँचाते हुए फ़िलिस्तीन के पक्ष में जनसमर्थन जुटाने में लगे हुए हैं। ऐसी ही एक दमनात्मक कार्रवाई का सामना 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' के कार्यकर्ताओं को गोरखपुर में करना पड़ा जब एक नुक्कड़ सभा के बाद भीड़ इकट्ठा करके सड़क जाम करने आदि का फ़र्ज़ी आरोप लगाते हुए तिवारीपुर थाने की पुलिस ने इन कार्यकर्ताओं पर फ़र्ज़ी मुक़दमा दायर कर दिया। इन कार्यकर्ताओं ने जब इस फ़र्ज़ी एफ़आईआर को हाईकोर्ट में चुनौती दी तो जज ने यह कहते हुए सुनवाई से इनकार कर दिया कि 'यह नेशनल पॉलिसी का मामला है'।

यह टिप्पणी स्पष्ट करती है कि एक तरफ़ जब भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया भर के इन्साफ़पसन्द नागरिक इज़रायली क़त्लेआम के विरुद्ध खड़े हैं, वहीं भारतीय फ़ासीवादी एकदम नंगे रूप में इस भयंकर मानवीय त्रासदी में हत्यारे ज़ायनवादियों का खुलकर साथ दे रहे हैं। इसके बावजूद उत्तर प्रदेश में इन्साफ़सन्द नागरिकों की बहुत बड़ी आबादी ज़ायनवादी नरसंहार के विरुद्ध खड़ी है और यह इस आन्दोलन का असर ही है कि फ़ासीवादी सरकार को इसे रोकने के लिए पूरी ज़ोर आज़माइश करनी पड़ रही है। बीडीएस कैम्पेन को लोगों का खुला समर्थन मिल रहा है और लोग इज़राइली कम्पनियों के उत्पादों का बहिष्कार कर रहे हैं। कई इलाक़ों में लोगों ने ख़ुद भी ज़ायनवादियों को समर्थन करने वाली कम्पनियों और उत्पादों के बहिष्कार की जानकारी देने वाले पोस्टर लगा रखे हैं। इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ में विभिन्न नागरिक संगठनों ने संयुक्त तौर पर प्रदर्शन करके इस क़त्लेआम को रोकने के लिए प्रशासन को ज्ञापन सौंपा। इन प्रदर्शनों में भी 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' के कार्यकर्ताओं ने भागीदारी की।

पुणे में फ़िलिस्तीन के समर्थन में चलाये जा रहे शान्तिपूर्ण अभियान पर संघी गुण्डों का कायराना हमला और पुलिस का मूकदर्शक बनकर देखते रहना और बाद में फ़िलिस्तीन के साथ एकजुटता ज़ाहिर करने वाले नौजवानों पर ही फ़र्ज़ी आरोप मढ़ देना, इस बात को ही स्पष्ट करता है कि फ़ासीवादी ताक़तों की एकता ज़ायनवादी हत्यारों के साथ ही बनती है और सच को दबाने के लिए दोनों ही बर्बरता के किसी भी हद तक जा सकते हैं। मुम्बई पुलिस द्वारा भी ठीक यही दमनात्मक कार्रवाई आईपीएसपी (IPSP) के कार्यकर्ताओं के ऊपर की गयी। इसके अलावा हैदराबाद और विजयवाड़ा में भी फ़िलिस्तीनी जनता के समर्थन में लोग खुलकर सामने आ रहे हैं और अपनी एकजुटता जाहिर कर रहे हैं।

हैदराबाद में जनसम्पर्क अभियान के तहत मुशीराबाद, अशोक नगर, भगतसिंह नगर, सुन्दरैय्या पार्क, उस्मानिया विश्वविद्यालय, ई.एफ.एल.यू (EFLU), ओल्ड सिटी और लामाकाँ में जाकर लोगों से संवाद किया जा रहा है।

फ़िलिस्तीन के संघर्ष को लेकर बातचीत में लोगों के बीच गहरी संवेदना देखने को मिली और यह बहुत प्रेरक रहा कि छोटे बच्चे भी इस विषय को समझ रहे थे और अपना पक्ष स्पष्टता से रख रहे थे। स्थानीय आबादी ने अभियान में हिस्सेदारी के साथ-साथ आर्थिक सहयोग भी किया।

आन्ध्र प्रदेश के विजयवाड़ा और ताड़ेपल्ली की मज़दूर बस्तियों में भी लोगों ने फ़िलिस्तीन के मसले पर बीडीएस आन्दोलन की ज़रूरत को समझा और ज़ायनवादी इज़रायल के विरुद्ध लोगों को संगठित करने की ज़रूरत पर बल दिया। विजयवाड़ा के अलग-अलग विश्वविद्यालयों में जैसे कि लोयला कॉलेज, गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, आचार्य नागार्जुन यूनिवर्सिटी में भी बीडीएस मुहिम जारी है और इसकी सकारात्मक प्रतिक्रिया देखने को मिल रही है।

तिरुवनंतपुरम में बीडीएस अभियान के तहत पर्चे बाँटे गये और सेण्ट्रल पार्क, विथुरा चौक के आसपास पोस्टरिंग की गयी।

अलग-अलग जगहों पर चलाये गये अभियान में फ़िलिस्तीन की पूरी स्थिति से परिचित होने के बाद लोगों ने इसमें पहलक़दमी दिखाते हुए इज़रायली उत्पादों के बहिष्कार की बात कि और सक्रिय तौर पर अपनी दुकानों, घरों में बीडीएस के स्टिकर लगाये। उन भारतीय कम्पनियों के बहिष्कार की भी बात की गयी जो मुनाफ़े के सौदों के लिए हत्यारे इज़रायल के साथ व्यापार कर रहें हैं।

उपरोक्त राज्यों के कुछ शहरों में स्टारबक्स, डोमिनोज़, टाटा की कम्पनी ज़ूडियो और रिलायंस जैसी कम्पनियों के आउटलेट्स के बाहर भी प्रदर्शन किया गया, जिन्होंने अबतक सेटलरों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाये हुए हैं। लोगों के बीच पर्चे बाँटकर फ़िलिस्तीन की आज़ादी का समर्थन करने की अपील करते हुए, बीडीएस मुहिम को तेज़ करने की बात पहुँचायी गयी और इज़रायल से सम्बन्ध रखने वाली तमाम कम्पनियों के सामान को न ख़रीदने के लिए कहा गया।

फ़िलिस्तीन की लड़ाई आज दुनियाभर के न्यायपसन्द लोगों की लड़ाई बन गयी है। साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा फ़िलिस्तीन के बारे में फैलाये जा रहे झूठ और ग़लत ख़बरों का खण्डन करना आज बेहद ज़रूरी हो गया है।

फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन (IPSP) द्वारा चलाये जा रहे इस अभियान में लोगों को फ़िलिस्तीनी अवाम के संघर्षों से और उनके इतिहास से परिचित कराया जा रहा है और यह बात भी बतायी जा रही है कि इज़रायली सेटलर औपनिवेशिक राज्य ने शुरू से ही फ़िलिस्तीनी क़ौम को ख़ून की नदी में डुबोने की कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ी है। असल में इज़रायल कोई देश नहीं है बल्कि एक जारी औपनिवेशिक परियोजना है, जिसका अस्तित्व ही फ़िलिस्तीनी राष्ट्र की क़ीमत पर क़ायम हुआ है। इस सेटलर बस्ती ने पहले ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शह पर और उसके बाद अमरीकी साम्राज्यवाद की मदद के दम पर फ़िलिस्तीनी क़ौम पर एक भीषण युद्ध थोप रखा है। इज़राइल का काम मध्यपूर्व में अमरीकी सैन्य चौकी का काम करना है और उसके आर्थिक और राजनीतिक हितों की सुरक्षा करना है और इसे ही क़ायम रखने के लिए वह बर्बरता की सभी सीमाएँ पार कर रहा है, जिसके ख़िलाफ़ बोलना आज का सबसे ज़रूरी कार्यभार है।

– बिगुल संवाददाता

क्या है BDS आन्दोलन?

बहिष्कार (**B**oycott) के ज़रिये इज़राइल की नस्लभेदी (Apartheid) व्यवस्था, उसमें संलिप्त खेल, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थानों तथा सभी इज़रायली और उन अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों का बहिष्कार करना शामिल है, जो इज़रायल को मुनाफ़ा पहुँचाकर जनसंहार में उसकी मदद करती हैं।

निवेश वापसी (**D**ivestment) के तहत बैंकों, स्थानीय निकायों, चर्चों, पेंशन फण्डों और विश्वविद्यालयों से यह अपील की जाती है और उन पर यह दवाब डाला जाता है कि वे इज़रायली कम्पनियों और उससे जुड़ी किसी भी संस्था से अपना निवेश हटा लें, जो इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारों की सत्ता को बनाये रखने में मददगार है।

प्रतिबन्ध (**S**anctions) अभियानों का उद्देश्य सरकारों पर यह दबाव बनाना है कि वे अपने क़ानूनी दायित्वों को निभाएँ, इज़रायली बर्बरता को समाप्त करने में मदद करें और उसकी किसी भी रूप में सहायता न करें—जैसे कि अवैध इज़रायली बस्तियों के साथ व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना, सैन्य व्यापार और मुक्त व्यापार समझौतों को समाप्त करना तथा संयुक्त राष्ट्र और फ़ीफ़ी जैसे अन्तरराष्ट्रीय मंचों में इज़रायल की सदस्यता को निलम्बित करना।

इस अभियान का असर दुनियाभर में देखने को मिल रहा है। इज़रायल का समर्थन करने वाली कई कम्पनियों को भारी नुक़सान झेलना पड़ा है, तो कई दिवालिया तक हो चुकी हैं।

हाल ही में 22 मई, 2025 को नीदरलैण्ड के कई सारे विश्वविद्यालय जैसे कि रेडबॉड यूनिवर्सिटी, यूट्रेख़्ट विश्वविद्यालय और रॉडबौड विश्वविद्यालय ने बीडीएस के तहत इज़रायल के कॉलेजों के साथ सभी सम्बन्धों को समाप्त करने की घोषणा कर दी। वहीं जून महीने में आयरलैण्ड की क्वीन्स यूनिवर्सिटी ने कहा कि वह फ़िलिस्तीन में जारी जनसंहार में शामिल कम्पनियों से अलग हो गया है और इज़रायली विश्वविद्यालय से अब उनका कोई संस्थागत सम्बन्ध नहीं है।

इसी महीने में कनाडा के न्यू ब्रूनस्विक फ़ेडरेशन ऑफ़ लेबर ने इज़रायल को भेजे जा रहे हथियारों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने का आह्वान किया। इसके साथ ही ब्रिटेन और इटली में विशाल खाद्य खुदरा विक्रेता को-ऑप ग्रुप और कॉप अल्लेंज़ा 3.0 ने घोषणा की कि वे अपने सुपरमार्केट में इज़रायली उत्पादों की ख़रीद और बिक्री बन्द कर देंगे। एंटीगुआ और बारबुडा में बीडीएस आन्दोलन के प्रभाव की वज़ह से इज़रायल के लिए सैन्य आपूर्ति करने वाले परिवहनों को प्रतिबन्धित किया गया।

दिल्ली स्थित इज़रायली दूतावास के बाहर प्रदर्शन

क्या फ़िलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष का समर्थन करना और वहाँ जारी जनसंहार के ख़िलाफ़ बोलना हमारे देश में अपराध है?

फ़िलिस्तीन में जारी बर्बर इज़रायली नरसंहार के ख़िलाफ़ दुनियाभर में लोग सड़कों पर उतरकर विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं। हमारे देश के भी कई राज्यों में इंसाफ़पसन्द छात्र-नौजवान व नागरिक फ़िलिस्तीन की मुक्ति के लिए अपनी आवाज़ उठा रहे हैं। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI), फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन (IPSP), दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा व कई अन्य संगठनों द्वारा फ़िलिस्तीन की मुक्ति के समर्थन में देशभर में अभियान चलाया जा रहा है और बीडीएस अभियान के अन्तर्गत उन कम्पनियों व आउटलेट्स के बाहर विरोध प्रदर्शन भी किये जा रहे हैं जो इज़रायल के साथ मुनाफ़े के सौदे के लिए किसी भी तरह का सम्बन्ध बनाये हुए हैं। इसी सिलसिले में 23 जून की शाम को IPSP द्वारा दिल्ली में स्थित इज़रायली दूतावास के सामने विरोध प्रदर्शन आयोजित किया गया था। इस शान्तिपूर्ण प्रदर्शन के ज़रिए छात्र-नौजवान मोदी सरकार से यह माँग कर रहे थे कि वह ज़ायनवादी इज़रायल के साथ अपने सभी राजनायिक,अकादमिक, वाणिज्यिक आदि सम्बन्ध को ख़त्म करे। इस विरोध प्रदर्शन के दौरान लोगों ने हत्यारे नेतन्याहू के साथ इज़रायली झण्डे तथा इस जनसंहार में मददगार अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की तस्वीरें जलाकर अपने ग़ुस्से को व्यक्त किया।

इज़रायली दूतावास के बाहर प्रदर्शन शुरू होते ही दिल्ली पुलिस द्वारा प्रदर्शनकारियों को रोकने के लिए बुरी तरह बल प्रयोग किया गया। पुलिस ने शान्तिपूर्ण प्रदर्शन का बर्बरता से दमन किया। पुरुष पुलिसकर्मियों ने महिला प्रदर्शनकारियों के साथ मारपीट व बदतमीज़ी की, उनके बाल खींचे गये और यहाँ तक कि कुछ लोगों के कपड़े फाड़ दिये गये। प्रदर्शन में शामिल एक छात्र, जो दृष्टिबाधित हैं, उन्हें भी दिल्ली पुलिस ने ज़मीन पर गिराकर उनके साथ मारपीट की। इस हाथापाई में दिल्ली पुलिस ने मीडियाकर्मियों को भी नहीं बख़्शा, उनके साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती के अलावा उनके कैमरा-फ़ोन-मेमोरी कार्ड तक छीन लिये गये। इसके बाद प्रदर्शनकारियों को जबरन हिरासत में लिया गया और अलग-अलग गाड़ियों में भरकर कुछ लोगों को तुग़लक़ रोड थाने और कुछ लोगों को मन्दिर मार्ग थाने ले जाया गया। पुलिस की ज़ोर-ज़बरदस्ती की वजह से कई लोगों की तबियत बिगड़ गयी, एक छात्रा को तो अस्पताल में भर्ती कराने की नौबत आ गयी। हिरासत में लिये गये प्रदर्शनकारियों को रात के 1 बजे तक ग़ैरक़ानूनी रूप से थाने में रखा गया। इसी दौरान IPSP से जुड़े प्रियम्वदा और विशाल को पूछताछ के नाम पर प्रताड़ित किया गया। आईबी, सीआईडी और स्पेशल ब्रांच के अधिकारियों ने डिटेंशन के दौरान ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से देर रात तक पूछताछ जारी रखी और यह भी बताते रहे कि फ़िलिस्तीन का मसला एक ख़ास धर्म का मसला है इसलिए हमें फ़िलिस्तीन को लेकर चुप रहना चाहिए। पूछताछ के दौरान उन्हें यह भी हिदायत दी गयी कि इज़रायल के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन करके और इज़रायली झण्डा जलाकर हमने ठीक नहीं किया है और अगर हमने अपना आन्दोलन जारी रखा तो हमें गम्भीर क़ानूनी परिणाम भुगतने होंगे।

थाने के अन्दर भी पुलिस द्वारा अलग-अलग तरीक़े से नौजवानों को डराया-धमकाया जा रहा था मगर उनपर धमकियों का कोई असर न होता देख पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के ख़िलाफ़ झूठे आरोपों के तहत एफ़आईआर दर्ज कर दी जिसमें बीएनएस की धारा 121(1), 132, 221 और 223(a) के तहत शिकायत दर्ज की गयी है।

विरोध की हर आवाज़ को रोकने के लिए दिल्ली पुलिस आये दिन लोगों के ऊपर फ़र्ज़ी एफ़आईआर करके उन्हें डराने-चुप कराने का काम करती है। इज़रायली नरसंहार के ख़िलाफ़ बोलने पर पुलिस द्वारा की गयी बर्बरता ऐसी थी जैसे कि वह इज़रायल जैसे हत्यारे सेटलर कोलोनियल प्रोजेक्ट की तरफ़दारी के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। उनकी मुस्तैदी और दमन से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे ज़ायनवादी इज़रायल की सुरक्षा में तैनात हैं।

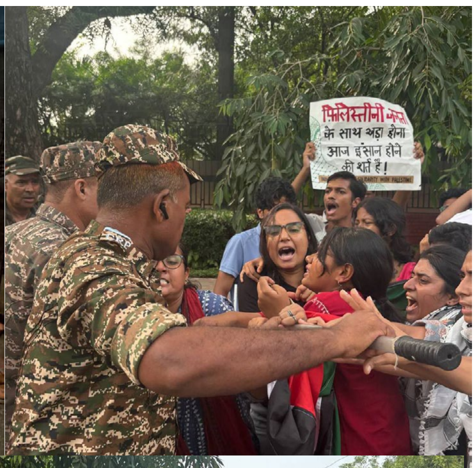

पुलिस के इस दमनकारी रवैये के विरोध में आवाज़ उठाते हुए और यह सवाल पूछते हुए कि – क्या एक ग़ुलाम मुल्क की आज़ादी की बात करना आज हमारे देश में अपराध हो गया है? – IPSP द्वारा प्रेस क्लब ऑफ़ इण्डिया, दिल्ली में 27 जून को प्रेस वार्ता आयोजित की गयी। इस प्रेस वार्ता में IPSP की ओर से विशाल और प्रियम्वदा ने बात रखी। प्रेस वार्ता को जाने-माने बुद्धिजीवियों और जनवादी तथा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने भी सम्बोधित किया। सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता और 'ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क' के सदस्य कोलिन गोंज़ाल्वेस, दिल्ली विश्वविद्यालय की सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर नन्दिता नारायण, जेएनयू में एसोसिएट प्रोफ़ेसर सौम्यब्रत चौधरी और सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी के मृगांक ने भी बात रखी। वक्ताओं ने फ़िलिस्तीन के समर्थन में जारी जन आन्दोलन के साथ अपनी एकजुटता व्यक्त की और लोकतांत्रिक संस्थाओं पर फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा जारी हमले और देश में हर असहमति की आवाज़ को चुप कराने के रवैये की निन्दा करते हुए इसके ख़िलाफ़ साथ आने की अपील की।

वक्ताओं ने कहा कि आज फ़िलिस्तीन के साथ खड़ा होना इन्सानियत की कसौटी है और दिल्ली पुलिस द्वारा शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर की गयी यह दमनकारी कार्रवाई कुछ और नहीं बल्कि फ़ासीवादियों और ज़ायनवादियों के घिनौने गठजोड़ को दिखाती है।

प्रियम्वदा ने कहा, "फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसकी कठपुतली दिल्ली पुलिस के दमनकारी हथकण्डों से IPSP के कार्यकर्ता डरने वाले नहीं है। हम न केवल अपने ऊपर लगाये गये झूठे आरोपों के ख़िलाफ़ अदालत का रुख करेंगे बल्कि IPSP के कार्यकर्ताओं और महिला प्रदर्शनकारियों पर किये गये क्रूर हमले, उत्पीड़न और उन पर की गयी लैंगिक टिप्पणियों, दलित प्रदर्शनकारियों को दी गयी जातिवादी गालियों के ख़िलाफ़ हम दिल्ली पुलिस पर एफ़आईआर भी दर्ज करायेंगे।

विशाल ने कहा कि , "सत्ता में बैठी भाजपा सरकार अपने आईटी सेल और गोदी मीडिया के दम पर जानबूझकर फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष को साम्प्रदायिक रंग दे रही है, ताकि वह देश में मुसलमानों को और अधिक व बड़े दुश्मन के रूप में पेश कर सके।" फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष के धर्मनिरपेक्ष चरित्र पर ज़ोर देते हुए विशाल ने कहा कि "इज़रायल-फ़िलिस्तीन का मुद्दा यहूदियों और मुसलमानों के बीच धार्मिक संघर्ष का मुद्दा नहीं है। यह एक उत्पीड़ित राष्ट्र का अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष है, उस उपनिवेशवादी राज्य के ख़िलाफ़ जिसने फ़िलिस्तीनी लोगों को 77 साल से अधिक समय से बेड़ियों में जकड़े रखा है। भारत भी कभी ग़ुलाम देश था और भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु जैसे हमारे शहीद क्रान्तिकारियों ने हमें सभी प्रकार के राष्ट्रीय उत्पीड़न और उपनिवेश के ख़िलाफ़ लड़ना सिखाया है। फ़िलिस्तीन के मुक्ति आन्दोलन का समर्थन करने और इज़रायल द्वारा जारी नरसंहार का विरोध करने का सवाल कोई धार्मिक सवाल नहीं है, बल्कि यह इन्सानियत और विवेक की कसौटी बन गया है। जिस व्यक्ति में थोड़ी भी इन्सानियत और विवेक है, वह ग़ज़ा में फ़िलिस्तीनी बच्चों के बर्बर नरसंहार का समर्थन नहीं कर सकता।"

अक्टूबर 2023 के बाद से अब तक हत्यारे इज़रायल द्वारा ग़ज़ा में 60,000 से ज़्यादा फ़िलिस्तीनियों का नरसंहार किया जा चुका है जिसमें 20,000 से ज़्यादा मासूम बच्चे हैं। अब कुछ रिपोर्टों में यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि मरने वालों की तादाद इससे कई गुना ज़्यादा हो सकती है। ग़ज़ा की 80% से अधिक इमारतें मलबे के ढेर में तब्दील हो चुकी हैं, अधिकतर स्कूलों व अस्पतालों को तबाह कर दिया गया है। इज़रायल फ़िलिस्तीनियों को एक तरफ़ बम, मिसाइल और बन्दूक से मार रहा है तो दूसरी तरफ़ राहत सामग्री पर रोक लगाकर, जो लोग इससे बच जा रहे हैं उन्हें भूख से मरने के लिए मजबूर कर रहा है।

आज़ादी के बाद से ही हमारे देश की सरकारें हमेशा से फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष की समर्थक रही हैं। लेकिन आज फ़ासीवादी मोदी सरकार क़ागज़ पर तो फ़िलिस्तीन का समर्थन करती है लेकिन अलग-अलग मौक़े पर ज़ायनवादियों के साथ मोदी सरकार का नाजायज़ सम्बन्ध सबके सामने आ ही जाता है। हमारे देश की गोदी मीडिया, आईटी सेल, और सरकार फ़िलिस्तीन और इज़रायल के मुद्दे को मुसलमान बनाम यहूदी का मुद्दा बता रहे हैं, लेकिन जो लोग फ़िलिस्तीन का इतिहास जानते हैं उन्हें पता है कि 1948 से पहले इज़रायल नामक कोई देश नहीं था। इज़रायल कोई देश या राष्ट्र नहीं बल्कि फ़िलिस्तीन पर जबरन क़ब्ज़ा करने की एक सेटलर औपनिवेशिक परियोजना है। यह पश्चिमी साम्राज्यवाद द्वारा बनायी गयी एक औपनिवेशिक बस्ती है, जिसका इस्तेमाल वह फ़िलिस्तीनियों के दमन, विस्थापन व हत्या के लिए और साथ ही मध्य-पूर्व में पश्चिमी साम्राज्यवाद के हितों की सुरक्षा में इस्तेमाल की जाने वाली सैन्य चौकी के रूप में करता है। न तो फ़िलिस्तीन का मसला कभी धर्म का मसला था और न ही यह आज है। यह एक ग़ुलाम बनाये गये मुल्क की आज़ादी के लिए जारी लड़ाई है। ऐसे में आज दुनिया के हर इन्साफ़पसन्द इन्सान का कर्तव्य है कि वह फ़िलिस्तीन के साथ खड़ा हो।

IPSP देश के अलग-अलग हिस्सों में फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष को लेकर लोगों को जागृत और संगठित कर रहा है और अवाम के बीच इस सच को लेकर जा रहा है कि फ़िलिस्तीन का मसला न तो किसी धर्म का मसला है ना ही वहाँ के लोगों के संघर्ष को किसी आतंकवादी कार्रवाई के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। फ़िलिस्तीनी जनता की लड़ाई औपनिवेशिक ताक़तों के ख़िलाफ़ अपने मुल्क की आज़ादी की लड़ाई है और आज फ़िलिस्तीन के साथ खड़ा होना इंसान होने की शर्त है।

इसके साथ ही, IPSP द्वारा भारत में बीडीएस (बहिष्कार, निवेश वापसी, प्रतिबन्ध) आन्दोलन चलाया जा रहा है जिसके माध्यम से फ़िलिस्तीनी में जनसंहार में शामिल इज़रायली कम्पनियों तथा इज़रायल को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मदद करने वाली कम्पनियों के पूर्ण बहिष्कार की अपील की जा रही है। मुनाफ़े के लिए आज जिन कम्पनियों ने इज़रायल के साथ रिश्ते बनाये हुए हैं उनके पूर्ण बहिष्कार के साथ-साथ अनेक संस्थानों, बैंकों इत्यादि पर भी यह दबाव बनाया जा रहा है कि वे इज़राइल से अपने हर तरह के निवेश को वापस लें और इज़रायाली उपनिवेशवादियों पर प्रतिबन्ध लगायें।

प्रेस वार्ता में आईपीएसपी के कार्यकर्ताओं ने फ़िलिस्तीन के मसले पर मोदी सरकार के दोमुँहेपन का पर्दाफ़ाश किया और हत्यारे इज़रायल के साथ उसके मधुर सम्बन्ध को भी उजागर किया। उन्होंने कहा कि वे दिल्ली पुलिस के झूठे मुक़दमे, शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर कायराना हमले व बर्बर दमन से डरने वाले नहीं हैं और वह अपने अभियान को अधिक से अधिक लोगों तक लेकर जाने के लिए संकल्पबद्ध हैं । IPSP, फ़िलिस्तीन अवाम के साथ मज़बूती से खड़ा है और उनके मुक्ति संघर्ष का पूर्ण समर्थन करता है।

– बिगुल संवाददाता

साम्राज्यवाद आज भी एक काग़ज़ी बाघ है!

(पेज 1 से आगे)

ज़्यादा दिन नहीं टिक पाता। हालाँकि शुरुआत में इज़राइल द्वारा हमले के फौरन बाद अमेरिका के विदेश मन्त्री मार्को रूबियो ने ईरान पर हुए इन हमलों में अमेरिका का हाथ होने से इन्कार किया है। लेकिन इस दावे पर कोई भरोसा नहीं कर सकता है क्योंकि यह एक ख़ुला रहस्य है कि इज़रायल इतना बड़ा हमला अमेरिका की मंज़ूरी और उसकी मदद के बग़ैर नहीं कर सकता। सच तो यह है कि इज़राइल अमेरिका के वित्तीय, सैन्य और राजनीतिक समर्थन के बिना एक दिन भी मध्य-पूर्व में अस्तित्व में नहीं सकता है। इज़राइल दुनिया में सबसे अधिक अमेरिकी सहायता पाने वाला राज्य है। द्वितीय विश्व युद्ध से लेकर अब तक इज़राइल ने मध्यपूर्व में अमेरिका के लिए लठैती करने की एवज़ में 158 बिलियन डॉलर की कुल सहायता प्राप्त की है। वर्तमान में इज़राइल को सैन्य सहायता के तौर पर अमेरिका से 3.8 बिल्यन डॉलर प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं, जोकि इज़राइल के कुल सैन्य बजट का 16 प्रतिशत है।

इज़राइल ने ईरान पर हमले के पीछे का कारण अपनी आत्म-रक्षा बताया था। यह वही "आत्म-रक्षा' है जो ज़ायनवादी इज़राइल पिछले 20 महीने से फिलिस्तीनी बच्चों का कत्लेआम करके कर रहा है! हमले के बाद इज़राइल ने 'भेड़िया आया! भेड़िया आया!' का फ़र्ज़ी शोर मचाते हुए दावा किया कि ईरान अपनी नाभिकीय शक्ति बढ़ा रहा है और नाभिकीय हथियारों का परीक्षण कर रहा है। जबकि सच्चाई कुछ और ही है। ये हमले ठीक उस समय हुए जब अमेरिका और ईरान के बीच ओमान व रोम में नाभिकीय समझौते को लेकर वार्ता चल रही थी। इज़राइल ने ईरान पर हमले में वार्ता के मुख्य ईरानी मध्यस्थ की भी हत्या कर दी। ग़ौरतलब है कि अमेरिका-ईरान की बातचीत का अगला चरण 15 जून को तय था और ईरान पर इज़रायली हमले के बाद यह नाभिकीय समझौता भी खटाई में पड़ गया।

जैसा कि हमने उल्लेख किया कि ईरान पर किये गये हमले के पीछे इज़रायल ने वजह बतायी कि ईरान नाभिकीय हथियार बनाने की दहलीज़ पर हैं, लेकिन उसने अपने इस दावे के पीछे कोई प्रमाण देने की ज़रूरत नहीं समझी। विडम्बना यह है कि इज़रायल स्वयं नाभिकीय हथियारों से लैस मध्य-पूर्व का एकमात्र राज्य है! इज़रायल के इस हास्यास्पद दावे से अचानक ही इराक़ युद्ध की याद आ जाती है। उस समय भी इराक़ पर अमेरिकी साम्राज्यवादी हमले के पीछे यह दावा किया गया था कि इराक़ के पास बड़े पैमाने पर तबाही मचाने वाले हथियार हैं। इसी प्रकार अमेरिकी साम्राज्यवाद ने "लोकतन्त्र का निर्यात करने" के नाम पर अफ़ग़ानिस्तान पर हमला किया था। इतिहास गवाह है कि ये सभी दावे बिल्कुल झूठे थे। आज भी ईरान पर किये गये हमले के पीछे जो तर्क दिये जा रहे हैं उनका सच्चाई से कोई लेना-देना नहीं है। वैसे भी किसी देश को महज़ इस आधार पर किसी दूसरे देश पर हमले करने का कोई हक़ नहीं है कि दूसरा देश कोई ख़ास प्रकार के हथियार बना रहा है। इज़राइल द्वारा किया गया हमला किसी भी रूप में आत्मरक्षा की कार्रवाई नहीं है बल्कि इज़राइल समूचे मध्य-पूर्व में अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रहरी की भूमिका निभा रहा है। इसके अलावा इज़राइली हमले का मक़सद एक अमेरिका-परस्त ईरानी शासक को सत्ता में बिठाना था जिसे नेतन्याहू बार-बार दुहरा भी रहा था।

इन हमलों में ईरान के कई शीर्ष सैन्य अधिकारियों और नाभिकीय वैज्ञानिकों की जानें गयी। साथ ही सैकड़ों आम नागरिकों की जानें गयीं। 16 जून को इज़रायल ने ईरान के सरकारी टेलीविज़न स्टेशन पर भी हमला किया। ईरान ने भी इन हमलों को चुपचाप सहने की बजाय जवाबी कार्रवाई में इज़रायल पर मिसाइलों और ड्रोनों से हमला किया है जिनमें दर्जनों इज़रायली मारे गये। ख़बरों के मुताबिक़ इज़रायल ने ईरान के नाभिकीय संस्थानों पर भी हमला किया है जिसके भीषण दुष्परिणाम हो सकते हैं। लेकिन इज़रायल पर हुए हमले उसके लिए प्राणान्तक साबित हो सकते थे क्योंकि इज़रायल कोई देश या राष्ट्र नहीं है, बल्कि एक सेटलर औपनिवेशिक परियोजना है। यही वजह थी कि जब ईरानी मिसाइलों ने अमेरिकी साम्रज्यवादी के इस लठैत के कब्ज़े में मौजूद इलाकों में भारी तबाही मचानी शुरू की तो एक ओर इज़रायली हज़ारों की संख्या में अपने घरों को, यानी यूरोपीय देशों को भागने लगे, वहीं सेना के तमाम हिस्सों में बग़ावत जैसे हालात पैदा हो गये। कुछ शहरों में तो इज़रायली सेटलरों ने सड़कों पर उतरकर विरोध किया और ईरान के सामने सफ़ेद झण्डा फैला दिया। ईरान तमाम नुक़्सान झेलकर भी टिक सकता है, क्योंकि वहाँ की जनता अपने शासक वर्ग से तमाम गम्भीर अन्तरविरोधों के बावजूद देश पर ज़ायनवादी और साम्राज्यवादी हमलों की सूरत में देश की आज़ादी के लिए लड़ने को और मरने को तैयार है। इसलिए इज़रायल और ह्रासमान अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए हार तय थी।

इज़रायल शुरू से अमेरिका को भी इस युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से घसीटना चाह रहा था। हालाँकि शुरुआत में अमेरिका ने इस युद्ध में प्रत्यक्ष भागीदारी नहीं की है और जब की भी तो महज़ प्रतीकात्मक तौर भी की। वजह यह है कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के इस बार चुनाव जीतने का एक बड़ा कारण यह प्रचार था कि ट्रम्प के नेतृत्व में अमेरिका अब बेकार की युद्ध कार्यवाइयों में नहीं उलझेगा जैसा कि पूर्व डेमोक्रैट राष्ट्रपतियों के कार्यकालों में होता रहा है। 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' का वोटर आधार इसी वजह से ट्रम्प को विजयी बनाने में कामयाब हो पाया था। इसके अलावा अमेरिकी पूँजीपति वर्ग का एक विचारणीय हिस्सा भी फिलहाल कोई बड़ा युद्ध अभियान नहीं चाहता था जिसकी वजह अमेरिकी अर्थव्यवस्था का गहराता आर्थिक संकट है। हालाँकि अमेरिका के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध में शामिल न हो पाने की स्थिति में भी इज़राइल को सैन्य, वित्तीय और खुफ़ियामदद के ज़रिये पहले से ही अप्रत्यक्ष रूप से भागीदारी की जा रही थी। आगे अमेरिका ने इज़्ज़्त बचाने के प्रयास में ईरान के तीन आणविक ठिकानों पर प्रतीकात्मक हमला किया जिससे कोई विशेष नुक़्सान नहीं हुआ और साथ में अमेरिका की इज़्ज़त भी बचने के बजाय, जो बची-खुची थी वह भी जाती रही।

ज़ायनवादी इज़रायल ने ईरान पर हमला एक ऐसे समय किया है जब गाज़ा में पिछले 20 महीने के जारी नरसंहारक युद्ध में बच्चों और महिलाओं समेत 60 हज़ार लोग मारे जा चुके हैं और गाज़ा में भुखमरी और अभूतपूर्व मानवीय संकट की ख़बरें पूरी दुनिया में फैल रही हैं जिनकी वजह से इज़रायल के आतंकी चरित्र के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को पता चल रहा है। पिछले 20 महीनों में इज़रायल ने गाज़ा में हमास, लेबनान में हिज़बुल्लाह, यमन में हूथी विद्रोहियों पर हमलों के अलावा सीरिया व ईरान पर हमले किये हैं। इन हमलों के बावजूद वह फ़िलिस्तीनी जनता के प्रतिरोध को नेस्तनाबूद करने के अपने लक्ष्य को हासिल नहीं कर सका है। हालाँकि इज़रायल हमास और हिज़बुल्लाह के शीर्ष नेतृत्व को ख़त्म करने में कामयाब हुआ है लेकिन वह इन संगठनों के वजूद को समाप्त करने से कोसों दूर है जिसकी वजह से वह बौखलाया हुआ है। ईरान पर किया गया हमला उसकी इसी बौखलाहट की निशानी भी है। इतना स्पष्ट है कि ईरान पर हमले का उसके नाभिकीय कार्यक्रम से कोई लेना-देना नहीं था। यह दरअसल मध्यपूर्व में अमेरिकी सामराज्यवाद के गिरते वर्चस्व की प्रतिक्रिया में उठाया गया एक और क़दम है।

अब इसमें कोई शक नहीं रह गया है कि विश्वपटल पर अमेरिकी साम्राज्यवाद अपनी ढलान पर काफ़ी आगे निकल चुका है। साम्राज्यवादी विश्व में अमेरिकी वर्चस्व का ह्रास ही अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। यह ह्रास मोटे तौर पर पिछले पाँच दशकों से जारी है, लेकिन पिछले डेढ़ दशकों में यह अभूतपूर्व तेज़ी से बढ़ा है। अमेरिकी पूँजीवाद का संकट लगातार गहराता जा रहा है। नये-नये युद्धों का सामने आना संकटग्रस्त साम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्तरविरोधों के गहराने की ही निशानी है। जहाँ एक ओर अमेरिकी साम्राज्यवाद अपनी ढलान पर है वहीं दूसरी ओर पिछले कुछ दशकों के दौरान चीन और रूस के नेतृत्व में साम्राज्यवाद की दूसरी धुरी स्पष्ट रूप से सामने आयी है। एक ओर अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिका की हार और दूसरी ओर पहले सीरिया और फिर यूक्रेन में अमेरिकी साम्राज्यवादी हस्तक्षेप को रूस द्वारा निष्प्रभावी बनाया जाना, इस साम्राज्यवादी धुरी के उभार की स्पष्ट अभिव्यक्तियाँ हैं। कच्चे माल, प्राकृतिक संसाधनों और बाज़ारों को लेकर इन दो साम्राज्यवादी धुरियों के बीच की प्रतिस्पर्धा ही दुनिया के विभिन्न हिस्सों में युद्धों के रूप में सामने आ रही है। ईरान की नज़दीकी रूस-चीन की साम्राज्यवादी धुरी से होने की वजह से भी अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायल के लिए ईरान को झुकना आसान नहीं था। ऐसा नहीं है कि ईरान में ख़ामनेई की धार्मिक कट्टरपन्थी सत्ता के ख़िलाफ़ जन-असन्तोष नहीं है, लेकिन अमेरिकी साम्राज्यवाद के हमले के ख़िलाफ़ वहाँ के लोग एकजुट थे।

दरअसल मध्य-पूर्व में दूसरे इराक़ युद्ध के बाद अमेरिकी साम्राज्यवाद के विकल्प घटते गये हैं। ईरान की रूस-चीन धुरी से नज़दीकी और सीरिया, लेबनॉन में हिज़बुल्लाह और यमन में हूथी विद्रोहियों के साथ मोर्चा अमेरिकी साम्राज्यवाद की मुश्किलें और बढ़ा रहा है। स्पष्ट तौर पर मध्य-पूर्व में साम्राज्यवादी युद्ध के विस्तार और लम्बे समय से जारी राजनीतिक उथल-पुथल के दूरगामी परिणाम होंगे। फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष उस चिंगारी के समान है जो पूरे जंगल में आग लगा सकती है। यह वह बारूद की ढेरी है जो समूचे अरब विश्व में क्रान्तियों की एक शृंखला की शुरुआत को जन्म देने की क्षमता रखती है। यह मध्य-पूर्व में साम्राज्यवाद के अन्तरविरोधों की प्रमुख गाँठ है। अरब जनता में फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के प्रति गहरी हमदर्दी और अमेरिकी व पश्चिमी साम्राज्यवाद-समर्थित ज़ायनवादी इज़राइल के प्रति गहरी नफ़रत है। पिछले 20 महीने के दौरान यह बात एक बार फिर से साबित हो चुकी है। यही कारण है कि फ़िलिस्तीन के सवाल पर घिनौना विश्वासघात कर चुके उनके अपने-अपने देशों की भष्ट और तानाशाहाना सत्ताओं और राजतन्त्रों के खिलाफ भी वे सड़कों पर उतरते रहते हैं। यह बात आज पहले से अधिक प्रामाणिकता रखती है कि ज़ायनवादी इज़राइल का स्थायी अस्तित्व अरब जगत में सम्भव नहीं है। इस बात को पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी समझती हैं और इज़राइल का शासक वर्ग भी समझता है। अरब जगत में सैन्य और राजनीतिक हस्तक्षेप करने की उनकी क्षमता का अपेक्षाकृत ह्रास हुआ है जो कि मध्य-पूर्व में अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व के ह्रास को ही दिखलाता है।

इज़रायल अपने अत्याधुनिक हथियारों के बावजूद ग़ज़ा में मुक्तियोद्धाओं के प्रतिरोध को कुचलने में नाक़ाम रहा है। यही वजह है कि वह अपनी खीझ और हताशा बेगुनाह बच्चों, औरतों, बूढ़ों और भूखे लोगों पर गोलियाँ और बम बरसाकर निकाल रहा है। एक अमेरिकी विश्वविद्यालय की रपट के ही अनुसार फ़लस्तीन में मारे जाने वाले लोगों की संख्या वास्तव में 4 लाख के क़रीब है। लेकिन इसके बावजूद फ़लस्तीनी जनता अपनी मुक्ति के लिए ग़ज़ा में अप्रतिम शौर्य और साहस के साथ लड़ रही है। इज़रायल अपने मारे गये सैनिकों की वास्तविक संख्या उजागर नहीं कर रहा लेकिन इज़रायल के ही कई अख़बारों के अनुसार मारे गये इज़रायली सैनिकों की संख्या 10,000 पार कर चुकी है। यह समझना ज़रूरी है कि फ़लस्तीन आज़ादी के लिए लाखों लोगों की कुरबानी देकर लड़ना जारी रख सकता है, लेकिन इज़रायल के लिए कुछ हज़ार सेटलर सैनिकों की जान जाना भी घातक है। वजह यही है कि इज़रायल एक सेटलर औपनिवेशिक परियोजना है, जो विशेष तौर पर अमेरिकी साम्राज्यवाद की मदद के बूते किसी तरह से घिसट-घिसटकर चल रही है। अब यह परियोजना अपने अन्तिम चरण में है। इसका ख़ात्मा ठीक-ठीक किस तरह से होगा, यह बताना सम्भव नहीं है। लेकिन फ़लस्तीनी प्रतिरोध, विश्व में इज़रायल और अमेरिका का अलग-थलग पड़ना, दुनिया भर में जनता द्वारा इज़रायल और उससे किसी भी रूप में जुड़ी कम्पनियों का बहिष्कार, और दुनिया भर में जनता का फ़लस्तीन के पक्ष में और अपने देश के इज़रायल-समर्थक हुक़्मरानों के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरना इज़रायल के अस्तित्व के संकट को लगातार बढ़ा रहा है और अन्तिम मुक़ाम तक पहुँचा रहा है। इतना तय है कि एक नस्लवादी, फ़ासीवादी-ज़ायनवादी राज्य के तौर पर इज़रायल का अस्तित्व स्थायी नहीं है और यह भविष्य में, शायद निकट भविष्य में, समाप्ति की ओर बढ़ेगा। इसका ह्रास अमेरिकी साम्राज्यवाद के आम ह्रास की प्रक्रिया का एक प्रातिनिधिक हिस्सा ही है।

आने वाले दिनों में अमेरिकी

(पेज 2 पर जारी)

फ़ासीवादियों द्वारा इतिहास के साम्प्रदायिकीकरण का विरोध करो!

अपने असली इतिहास को जानो! (भाग-1)

● भारत

आज हम ऐसे फ़ासीवादी दौर में जी रहे हैं, जहाँ हमारे सामने सच को लगातार छुपाने का काम किया जा रहा है। सच को छुपाने के लिए झूठ की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ खड़ी की जा रही हैं। फ़ासीवादी ताक़तें लगातार झूठे-मनगढ़न्त, अवैज्ञानिक और अतार्किक प्रचार के ज़रिये आम जनमानस की चेतना को भोथरा बना रही हैं। इतिहास का निर्माण जनता करती है। फ़ासिस्ट ताक़तें जनता की इतिहास-निर्मात्री शक्ति से डरती हैं। इसलिए वे न केवल इतिहास के निर्माण में जनता की भूमिका को छिपा देना चाहते हैं बल्कि इतिहास का ऐसा विकृतिकरण भी करते हैं, जिससे वे अपनी जनविरोधी विचारधारा और राजनीति को सही ठहरा सकें। संघ परिवार हमेशा से ही इतिहास का ऐसा ही फ़ासीवादी कुपाठ प्रस्तुत करता रहा है।

2014 में नरेन्द्र मोदी के सत्ता में आने के बाद से संघ परिवार और भाजपा द्वारा पूरे इतिहास के विकृतिकरण और साम्प्रदायिकीकरण की यह मुहिम कई गुना तेज़ हो चुकी है। संचार-क्रान्ति के इस दौर में पूँजीपतियों का साथ पाकर संघी फ़ासीवादियों ने इतिहास के विकृतिकरण की अपनी मुहिम को नया आयाम दिया है। फ़िल्मों, टीवी चैनलों से लेकर फ़ेसबुक, व्हाट्सएप और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया के हर प्लैटफ़ॉर्म पर आज फ़ासिस्टों का बोलबाला है। आरएसएस से जुड़े फ़िल्मकार अपनी फ़िल्मों में इतिहास के सही तथ्यों को उलटकर पेश कर रहे हैं। जानबूझकर इतिहास से छेड़खानी करते हुए फ़िल्मों में मुसलमानों को दुश्मन के रूप में पेश करने, टीवी चैनलों पर इतिहास के फ़ासीवादी संस्करण पर आधारित सीरियल दिखाये जाने जैसी बातें आम हो चुकी हैं। दिन-रात विषवमन करते हज़ारों यूट्यूब चैनल युवाओं की बहुत बड़ी आबादी के दिमाग़ में ज़हर घोल रहे हैं। इन क़दमों के ज़रिये आज पूरे देश को ये फ़ासिस्ट दंगों की प्रयोगशाला बनाने पर आमादा हैं।

यह सब अचानक नहीं हुआ है। भारत में फ़ासीवादी ताक़तें विगत एक शताब्दी में एक लम्बी प्रक्रिया में देश की हिन्दू आबादी के बड़े हिस्से में मिथकों को 'कॉमन सेंस' (सामान्य बोध) के रूप में स्थापित करने के लिए लगातार प्रयासरत रहे हैं और काफ़ी हद तक उन्होंने इसमें सफ़लता भी प्राप्त की है। किसी कल्पित अतीत के गौरव की वापसी का एक धार्मिक-भावनात्मक प्रतिक्रियावादी स्वप्न "रामराज्य" की स्थापना और भारत को विश्वगुरु बनाने जैसे नारों के रूप में संघी फ़ासिस्टों ने देश की हिन्दू मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय आबादी के बड़े हिस्से में भरा है। भारतीय समाज के ताने-बाने में तर्कणा, वैज्ञानिक चिन्तन और जनवाद का अभाव भी एक हद तक आरएसएस के फ़ासीवादी एजेण्डे के लिए उर्वर ज़मीन का काम करता है। पूँजीवादी विकास अपनी स्वाभाविक गति से ग्रामीण और शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग और मध्यवर्ग की एक आबादी को उजाड़कर असुरक्षा और अनिश्चितता की तरफ़ धकेलता रहता है। असुरक्षा और अनिश्चितता की यह स्थिति इस टुटपुँजिया वर्ग में प्रतिक्रियावाद की ज़मीन तैयार करती है। यह प्रतिक्रियावादी ज़मीन और जनमानस में जनवाद, तर्कणा और वैज्ञानिक चिन्तन की कमी टुटपुँजिया वर्ग को फ़ासीवादी प्रचार का आसान शिकार बना देती है।

फ़ासीवाद टुटपुँजिया वर्ग का एक संगठित प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है। यह इस टुटपुँजिया वर्ग को एक तरफ़ तो नस्ली, जातीय, धार्मिक आधार पर एक नक़ली दुश्मन प्रदान करता है। दूसरी तरफ़ वह इसके सामने एक गौरवशाली अतीत का मिथक रचता है। भारतीय फ़ासीवादी इसी तरह लम्बे समय से देश की हिन्दू आबादी को अतीत का वह स्वप्न दिखाते रहे हैं, जब इस महान जम्बूद्वीप भारतखण्ड पर "स्वर्ण युग" था, जिसे मुगलों तथा यवनों ने छीन लिया। आइए यह भी जान लेते हैं कि संघ द्वारा "गौरवशाली अतीत" के मिथक गढ़ने की शुरुआत कब और कैसे हुई!

अंग्रेज़ों के समय में औपनिवेशिक इतिहास-लेखन में भारत के इतिहास को विकृत रूप में पेश करते हुए यूरोपीय उपनिवेशवाद के नज़रिये के आधार पर उसकी व्याख्या की गयी थी। ज़ाहिर है कि इस पूरे लेखन में औपनिवेशिक हितों के हिसाब से भारत के इतिहास का पाठ प्रस्तुत किया गया। यह व्याख्या एक तरफ़ अनैतिहासिक दृष्टिकोण से भारतीय समाज को एक ठहरे हुए समाज के रूप में प्रस्तुत करती थी, तो दूसरी ओर औपनिवेशिक इतिहास लेखन की इस धारा ने भारतीय समाज के इतिहास को हिन्दू काल, मुसलमान काल और ब्रिटिश काल के रूप में विभाजित किया था। इस विभाजन को खड़ा करने में सबसे अग्रणी नाम जेम्स मिल का है। संघियो ने भी जेम्स मिल की इस अवधारणा को अपना लिया क्योंकि अंग्रेज़ो के साथ-साथ यह संघ के लिए भी फ़ायदेमन्द था। इतिहास का यही विभाजन आज के समय में भी संघी फ़ासीवादियों के कुपाठ को एक आधार प्रदान कर रहा है। ग़ौरतलब है कि संघी फ़ासिस्ट भी इतिहास की व्याख्या करते समय एक तरफ़ तो तरह-तरह के अनैतिहासिक-अनर्गल दावे करते हैं, दूसरी तरफ़ इतिहास की इस औपनिवेशिक व्याख्या की ही तरह इतिहास में हिन्दुओं के शासन और उसके बाद मुस्लिमों की ग़ुलामी और ब्रिटिश काल के रूप में इतिहास की व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। अपनी इस कुत्सित व्याख्या को व्यापक तौर पर फैलाने के लिए फ़ासीवादी तमाम संस्थाओं में घुसपैठ कर अपनी पकड़ बना चुके हैं। पाठ्यक्रमों में बदलाव करके युवा आबादी के इतिहासबोध को कुन्द करने में भी जी-जान से लगे हुए हैं। वहीं पिछले सौ सालों में समाज के ताने-बाने में अपनी पैठ बनाकर और अनगिनत प्रयोगों, मिथ्याप्रचारों और आन्दोलनों के ज़रिये फ़ासिस्टों ने अपने फ़ासीवादी प्रचार की ज़द में एक विचारणीय आबादी को ले लिया है।

पर हमें यह भी पता होना चाहिए कि फ़ासिस्ट इतिहास से ख़ौफ़ खाते हैं। ये इतिहास को इसलिए भी बदल देना चाहते हैं क्योंकि इनका अपना इतिहास राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से ग़द्दारी, माफ़ीनामे लिखने, क्रान्तिकारियों की मुख़बिरी करने, साम्प्रदायिक हिंसा और उन्माद फैलाने का रहा है। जब भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में अपनी शहादत दे रहे थे, तो उस दौर में संघी फ़ासिस्टों के पुरखे लोगों को समझा रहे थे कि अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ लड़ने की बजाय मुसलमानों और कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ लड़ना चाहिए! संघी फ़ासिस्टों के गुरु "वीर" सावरकर का माफ़ीनामा, अटल बिहारी वाजपेयी जैसे लोगों द्वारा मुख़बिरी और गाँधी की हत्या में संघ की भूमिका और ब्रिटिश सत्ता के प्रति वफ़ादारी के इतिहास को अगर फ़ासिस्ट सात परतों के भीतर छिपा देना चाहते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

ठीक यही कारण है कि आज हमें भी अपने असल इतिहास से परिचित होना होगा, जिसे संघियो द्वारा लगातार दबाया-छुपाया जाता रहा है। हमारे देश में भी इतिहासकारों की प्रगतिशील धारा रही है, जिन्होंने सही तथ्यों और तर्कों तथा वैज्ञानिक विश्लेषण के ज़रिये भारत के इतिहास की सही समझ विकसित की है। ऐसे इतिहासकारों की धारा संघी फ़ासीवादियों द्वारा इतिहास के विकृतिकरण और साम्प्रदायिकीकरण के ख़िलाफ़ एक दीवार की तरह खड़ी है। डी.डी. कोसाम्बी, रामशरण शर्मा, डी.एन. झा, सुमित सरकार, सतीश चन्द्रा, इरफ़ान हबीब, बिपन चन्द्र, सुवीरा जायसवाल जैसे इतिहासकारों ने औपनिवेशिक इतिहासलेखन से विच्छेद करते हुए इतिहास की वैज्ञानिक और भौतिकवादी समझदारी विकसित करते हुए भारत के सही इतिहास को सामने लाने में योगदान दिया है। डी.डी कोसाम्बी ने प्राचीन भारत के ऐतिहासिक भौतिकवादी इतिहासलेखन की नींव रखी और बाद में रामशरण शर्मा उनके कार्य को आगे बढ़ाते हुए उसे नयी ऊँचाइयों पर ले गये। इन इतिहासकारों ने इतिहास को राजा-रानी के क़िस्सों, इतिहास के अति महिमामण्डन और उसके चारों ओर लिपटे हुए मिथकीय आवरण से मुक्त कराया तथा इतिहास को गतिहीन और व्यक्तियों, घटनाओं व संयोगों के समुच्चय मात्र के रूप में देखने की धारणा पर चोट की। यही वजह है कि प्राचीन भारत के इतिहास को स्वर्णयुग की तरह पेश करने और "रामराज्य" के नाम पर दंगा-बलवा करने वाले फ़ासीवादियों को इस इतिहासबोध से सबसे ज़्यादा ख़तरा नज़र आता है।

फ़ासीवादियों के मनगढ़न्त व अवैज्ञानिक इतिहास की अवधारणा को जानने के बाद अब आगे बढ़ते हैं और शुरुआत करते हैं अपने देश के असल इतिहास को जानने की।

भारत के इतिहास को जानने की शुरुआत हम सबसे पहले करते हैं, उस शब्द से जिसे आज के फ़ासिस्ट सबसे ज़्यादा अलापते हैं, वह शब्द है 'हिन्दू'। आइए जानते हैं आख़िर 'हिन्दू' शब्द का क्या अर्थ है और यह कितना प्राचीन है! प्रख्यात विद्वान गुणाकार मुले अपनी पुस्तक 'इतिहास, संस्कृति और साम्प्रदायिकता, में लिखते हैं:

"वेदों में 'हिन्दू' शब्द कहीं भी नहीं मिलता। वैदिक आर्यों के धर्म को भी हम 'हिन्दू धर्म' नहीं कह सकते। बाद के धर्मसूत्रों तथा स्मृति ग्रन्थो में चातुर्वर्ण्य तथा पुनर्जन्मवाद के दर्शन होते हैं...'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धव' शब्द नदी और सात नदियों के अर्थ में कई बार ऋग्वेद में आये हैं। इसी अर्थ में 'हैन्दु', 'हिन्दु' तथा 'हफ्तहिन्दव' शब्द पारसियों के धर्मग्रन्थ अवेस्ता में मिलते हैं। उस ज़माने में सिन्धु या हिन्दु शब्द का जाति, धर्म या समाज के लिए कभी भी इस्तेमाल नहीं हुआ। पहली बार सातवीं-आठवीं शताब्दी में अरबों तथा ईरानियों ने सिन्धु प्रदेश को 'हिन्दू' नाम दिया और उसके बाद ही हमारे देश के सारे निवासियों के लिए 'हिन्दू' शब्द रूढ़ हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक अर्थ वाला यह हिन्दू शब्द मुश्किल से एक हज़ार साल पुराना है। पुराने ग्रन्थों में हिन्दू शब्द या हिन्दू धर्म की कोई व्याख्या नहीं मिलती। ठीक यही कारण है कि आज के हिन्दू धर्म के ठेकेदारों को हिन्दू शब्द की मनमाने ढंग से व्याख्या करने की छूट मिल गयी है। यहाँ तक कि सारे संसार को मिथ्या समझने वाले ब्रह्मवादी आदि शंकराचार्य भी 'हिन्दू' शब्द की कोई व्याख्या नहीं करते।

"संघी जिस "हिन्दू स्वर्ण काल" की बात करते हैं, यानी हर्षवर्धन या गुप्त सम्राटों के समय के किसी भी धर्म को 'हिन्दू धर्म' के नाम से नहीं जाना जाता था। उनके समय की या उनके पहले की भारतीय संस्कृति के लिए किसी भी ग्रन्थ में 'हिन्दू संस्कृति' शब्द नहीं मिलता। वास्तव में, 'हिन्दू' शब्द ही इस पूरे दौर में कहीं नहीं मिलता। ईसा की नौवीं-दसवीं सदी से पहले के ऐतिहासिक काल में यह शब्द कहीं मिलता ही नहीं है। उस समय के लोग भी अपने को हिन्दू नहीं कहते थे। उस समय के किसी भी भारतीय ग्रन्थ या अभिलेख में 'हिन्दू' शब्द देखने को नहीं मिलता। इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं कि 'हिन्दू' शब्द विदेशी व्युत्पत्ति का है, पहले पहल विदेशियों ने इसका इस्तेमाल किया और तदनन्तर ईसा की नौवीं-दसवीं सदी के बाद भारत की जनता ने इस शब्द को अपने लिए स्वीकार किया। और इस शब्द का इस्तेमाल उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से आने वाले विदेशी ईरानियों व अरबी लोगों ने किसी धर्म के लिए नहीं किया था, बल्कि एक निश्चित भूभाग (सिन्धु के पार का क्षेत्र) और उसमें रहने वाले लोगों के लिए किया था। इन लोगों में विभिन्न धार्मिक परम्पराएँ थीं, जिनमें से कुछ वैदिक धर्म से ही निकली थीं और कुछ अन्य थीं जो वैदिक धर्म के दायरे में कभी नहीं आयीं थीं।"

संघ के लिए 'हिन्दू' की परिभाषा क्या है, आइये जानते हैं संघियों के गुरुजी और माफ़ीवीर विनायक दामोदर से। सावरकर ने 'हिन्दू' की जो परिभाषा दी है, वह इस प्रकार है:

"आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका। पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥"

अर्थात्, सिन्धु नदी से लेकर समुद्र तक की भारतभूमि जिसकी पितृभूमि और पवित्र भूमि हो, वह हिन्दू है।

सावरकर का मानना था कि जिन लोगों के तीर्थस्थल इस इलाक़े में पड़ते हैं, वे हिन्दू ही हैं। सिख धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म को सावरकर हिन्दू धर्म की ही धाराएँ मानता था, क्योंकि उनके पवित्र स्थल सिन्धु और सप्तसिन्धु के बीच हैं। वे ही एक राष्ट्र, हिन्दू राष्ट्र का निर्माण करते हैं और वे ही उसके सदस्य माने जायेंगे। लेकिन भारत में ही सदियों से रह रहे ईसाई और मुसलमान नहीं क्योंकि उनके पवित्र स्थान मक्का, मदीना, येरुशलम आदि में हैं! यानी सावरकर ने धर्म और राष्ट्र के बीच का अन्तर मिटा दिया और धर्म को ही राष्ट्रीयता का आधार बना दिया।

अब आइये देखते हैं कि संघियों के दूसरे गुरु गोलवरकर का इस विषय पर क्या कहना है:

"हिन्दुओं के अन्तर्गत सभी मतों और विविध जातियों की परिभाषा हो सकती है, किन्तु 'हिन्दू' पद की परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें उन सभी का समावेश है। हमारे समाज का मूल तथा कब से हम यहाँ सुसभ्य जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं, उसकी तिथि से इतिहास के विद्वान अनभिज्ञ हैं। एक प्रकार से हम 'अनादि' हैं। ऐसे समाज की व्याख्या करना ठीक उसी प्रकार असम्भव है, जैसे उस परमसत्य की परिभाषा, क्योंकि शब्दों का उद्भव तो उसके बाद ही हुआ है। यही बात हिन्दू समाज के लिए है। हमारा अस्तित्व उस काल से है जबकि किसी भी नाम की आवश्यकता ही नहीं थी।" (विचार नवनीत, जयपुर, संवत् 2057, पृष्ठ 55-56)

गोलवलकर यदि हिन्दू धर्म के लिए अनादि, अनन्त तथा परमसत्य जैसे निरर्थक और निस्सार विशेषणों की आड़ ले रहे हैं तो इसलिए क्योंकि गोलवलकर जानते थे कि 'हिन्दू' की परिभाषा करने से वह फँस जायेंगे! क्योंकि किसी प्राचीन या वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थ में हिन्दू शब्द का कोई उल्लेख ही नहीं है। यह तो ईरानियों का दिया हुआ शब्द था, उस भूमि के

(पेज 10 पर जारी)

भाजपा के “रामराज्य” में बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराध

● **अदिति**

वैसे तो देश की सभी चुनावबाज़ पार्टियों में स्त्री-विरोधी अपराधी बैठे हुए हैं, लेकिन भाजपा ने इस मामले में भी सबको पीछे छोड़ दिया है। हाल की बलात्कार की तमाम घटनाओं में भाजपा से जुड़े हुए लोगों का लिप्त पाया जाना भाजपा के स्त्री-हितैषी होने के झूठ को तार-तार करके रख देता है और इस पार्टी के असली चेहरा को आम जनता के सामने बेनक़ाब करता है। 2014 के बाद से देश में ‘बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ’ का ख़ूब शोर मचाया गया, लेकिन बीते 11 सालों में देश में महिलाओं के साथ बर्बर बलात्कार की कई ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जो किसी भी संवेदनशील इन्सान को झकझोर कर रख देंगी। इन घटनाओं ने आम जनता के सामने कुछ बातों को एकदम स्पष्ट किया है। पहली बात तो यह कि भाजपा कितना भी स्त्री-हितैषी होने का दावा करे, बीते कुछ सालों में जिस बेशर्मी के साथ इसने बलात्कारियों को सुरक्षा और राजनीतिक संरक्षण देने का काम किया है, वह अभूतपूर्व है। दूसरा, देश में पुलिस-प्रशासन से लेकर क़ानून व्यवस्था का चरित्र भी स्त्री-विरोधी पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त है, जोकि पूँजीवादी व्यवस्था के वास्तविक चरित्र को भी साफ़ कर देता है।

‘बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ’ जैसे ढोंग-पाखण्ड से भरे नारों की असल सच्चाई यह है कि घरों, सड़कों, खेतों-फैक्ट्रियों, ऑफ़िसों, विश्वविद्यालयों-कॉलेजों सभी जगह स्त्रियों का उत्पीड़न कम होने की जगह बढ़ गया है। बलात्कार और उसके बाद बर्बरतापूर्ण हत्या की घटनाएँ अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश के अयोध्या से लेकर देश के अलग-अलग हिस्सों में अंजाम दी गयी हैं। ऐसा नहीं है कि 2014 से पहले हमारा देश स्त्रियों के लिए कोई स्वर्ग था, लेकिन यह बात आज दिन के उजाले की तरह साफ़ हो चुकी है कि फ़ासीवादी भाजपा के सत्तारूढ़ होने के बाद से इन घटनाओं में बेतहाशा तेज़ी आयी है। *एसोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म्स* की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान लोकसभा में क़रीब 43 प्रतिशत सांसदों के विरुद्ध स्त्री-विरोधी अपराधों सहित तमाम तरह के आपराधिक आरोप हैं। इनमें सबसे बड़ी संख्या भाजपा के सांसदों की है, जिनमें से 30 प्रतिशत के विरुद्ध बलात्कार, हत्या, अपहरण जैसे गम्भीर स्त्री–विरोधी अपराधों के आरोप हैं। एनसीआरबी की रिपोर्ट के मुताबिक़ 2020 में स्त्री-उत्पीड़न के 49,385 मामले दर्ज हुए थे, जो 2022 में बढ़कर 65,743 हो गये। स्त्रियों के उत्पीड़न में दोषियों को मिलने वाली सज़ा की दर 2021 के 25.2 प्रतिशत की तुलना में 2022 में घटकर 23.3 प्रतिशत हो गयी। राष्ट्रीय महिला आयोग के अनुसार 2019-20 की तुलना में घरेलू उत्पीड़न के मामलों में 2020-21 में 25.09 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भाजपा की साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति और उसके परिणामस्वरूप होने वाले या करवाये जाने वाले दंगों में स्त्रियाँ बर्बर बलात्कार और हत्या की शिकार हुई हैं। स्त्रियों की आबादी को भी धर्म के आधार पर बाँटा जा रहा है। दुनिया के सभी फ़ासिस्टों की तरह भारत के फ़ासिस्ट भी स्त्रियों को बच्चा पैदा करने, उन्हें पालने तथा घर-रसोई के कामों में ही क़ैद रखना चाहते हैं।

दो साल पहले बीएचयू कैम्पस में भाजपा आईटी सेल के पदाधिकारी लड़कों द्वारा छात्रा के साथ सामूहिक बलात्कार के बाद जिस तरह से अपराधियों को बचाने और उल्टे छात्रा को ही दोषी ठहराने की घृणित हरकतें की गयी वह सबके सामने है। ‘बेटी बचाओ’ का जुमला उछालने वाले प्रधानमन्त्री बनारस दौरे में लम्बी-चौड़ी हाँकते हैं, पर इस भयानक घटना पर चुप्पी साधे रहते हैं। जब महिला पहलवानों ने बृजभूषण शरण सिंह के ख़िलाफ़ यौन शोषण का आरोप लगाया था तो “स्त्री सम्मान” की रक्षा की बात करने वाली पार्टी भाजपा ने पूरी ताक़त से इस अपराधी का बचाव किया और अब वह सभी आरोपों से बरी हो चुका है। बिल्किस बानो के बलात्कारियों के रिहाई आदेश को मोदी सरकार के गृह मन्त्रालय द्वारा आधिकारिक तौर पर मंज़ूरी दी गयी थी और भाजपा नेताओं द्वारा अच्छे “संस्कारी ब्राह्मण” होने के लिए रिहा किये गये इन बलात्कारियों का स्वागत फूल-मालाओं से किया गया था! कठुआ में 8 साल की बच्ची के बलात्कारियों के समर्थन में इन्हीं भाजपाइयों ने तिरंगा लेकर रैली निकाली थी। हाथरस में बलात्कार की घटना हुई तो उसके आरोपियों को बचाने के लिए सवर्णों की ग्यारह गाँवों की पंचायत करने वाले जातिवादियों को भाजपा की योगी सरकार ने पूरा संरक्षण और मदद प्रदान की। इससे पहले भी भाजपा ने कुलदीप सिंह सेंगर, चिन्मयानन्द से लेकर तमाम बलात्कारियों का मज़बूती से साथ दिया है। राम रहीम और आसाराम जैसे बलात्कारियों को बार-बार ज़मानत देकर भी मोदी सरकार और अदालतें यही सन्देश दे रही हैं कि वे किसके साथ खड़ी हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भाजपा बलात्कारियों की न सिर्फ़ शरणस्थली रही है बल्कि जन्मस्थली भी रही है। “संस्कृति”, “संस्कार”, “चाल-चेहरा-चरित्र” की बात करने वाली भाजपा और संघ परिवार के नेताओं की असलियत यही है कि इसमें सारे निकृष्ट कोटि के बदमाश, बलात्कारी, अपराधी, और हत्यारे मौजूद हैं! यही भाजपा के शुचिता और संस्कार का सच है!

फ़ासीवादी भाजपा के शासन में एक तरफ़ महिलाओं को ही सीमा में और संस्कार में रहने की हिदायत दी जाती है, महिलाओं के कपड़े पहनने, खाने, जीवनसाथी चुनने की आज़ादी पर हमला किया जाता है और दूसरी तरफ़ बलात्कारियों को खुली छूट मिलती है! जब ऐसी पार्टी सत्ता में होगी तो क्या नवधनाढ्य वर्गों, लम्पट टुटपुँजिया वर्गों और नेताओं की बिगड़ी औलादों का दुस्साहस नहीं बढ़ेगा कि वह किसी भी औरत पर हमला करे और उसका बलात्कार करे? जब इन आपराधिक तत्वों को यह यक़ीन है कि इन अपराधों की उसे कोई सज़ा नहीं मिलेगी, बस उसे भाजपा में शामिल हो जाने की आवश्यकता है, तो ज़ाहिर सी बात है कि स्त्री–विरोधी अपराधों में बढ़ोत्तरी तो होगी ही। शुचिता और संस्कार का ढोंग करने वाली फ़ासीवादी भाजपा के राज ने इस पतनशील और प्रतिक्रियावादी स्त्री-विरोधी मानसिकता को और मज़बूत किया है। भाजपा के गुरू गोलवलकर का मानना था कि औरतें बच्चा पैदा करने का यन्त्र होती हैं; इनके माफ़ीवीर सावरकर का मानना था कि बलात्कार का राजनीतिक हिंसा के उपकरण के तौर पर इस्तेमाल किया जाना चाहिए। यही इनकी असली जन्मकुण्डली है!

यह सच है कि महिलाओं के ख़िलाफ़ अत्याचार और स्त्री विरोधी मानसिकता सदियों से क़ायम वर्ग समाज और वर्तमान पूँजीवादी पितृसत्तात्मक भारतीय समाज की एक कड़वी सच्चाई रही है, लेकिन फ़ासीवादी भाजपा के राज में बलात्कारियों, छेड़छाड़ करने वालों और बार-बार अपराध करने वालों को जो छूट मिल रही है वह चौंकाने वाली सच्चाई है। निश्चित तौर पर, स्त्रियों की ग़ुलामी क़ायम रहने तक स्त्री-विरोधी अपराधों को जड़-मूल से समाप्त करना सम्भव नहीं है, यदि हमें इन स्त्री-विरोधी अपराधों को ख़त्म करना है, तो हमें उस पूँजीवादी व्यवस्था और समूचे वर्ग समाज के ख़िलाफ़ निर्णायक संघर्ष छेड़ना होगा जो पितृसत्ता, मर्दवाद, स्त्री-पुरुष असमानता के तमाम रूपों को जन्म देता है और उनका फ़ायदा उठाता है। लेकिन हमें इस विशेष परिस्थिति को भी समझना होगा कि जब भी पूँजीपति वर्ग की नग्न व बर्बरतम तानाशाही क़ायम होगी यानी फ़ासीवादी ताक़तें सत्ता पर काबिज़ होंगी तो औरतों के ख़िलाफ़ अपराधों में अभूतपूर्ण बढ़ोत्तरी होगी! अभी भाजपा जैसी फ़ासीवादी पार्टी के शासन में यही हो रहा है। आज फ़ासीवादी सत्ता ने समाज के सबसे आपराधिक, पाशविक, बर्बर और प्रतिक्रियावादी तत्वों व शक्तियों को न सिर्फ़ खुला हाथ दे दिया है बल्कि भाजपा राज्य मशीनरी में अपनी व्यवस्थित घुसपैठ के ज़रिये उनका खुलेआम संरक्षण कर रही है। असल में स्त्री-विरोधी अपराधों में बढ़ोत्तरी इस फ़ासीवादी उभार का एक अंग है और इसलिए आज हमें अपने इस सबसे बड़े दुश्मन यानी कि फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए एकजुट, गोलबन्द और संगठित होना होगा।

फ़ासीवादियों द्वारा इतिहास के साम्प्रदायिकीकरण का विरोध करो!

(पेज 9 से आगे)

लिए और वहाँ रहने वाले लोगों के लिए जिसे आज भारत के नाम से जाना जाता है। तब राजनीति के मंच से हिन्दू व हिन्दू धर्म के बारे में मनमाने, असंगत विचार व्यक्त करने के लिए उन्हें और उनके अण्डभक्तों को खुली छूट नहीं मिलेगी। इसलिए आज भी अण्डभक्त जिस ‘हिन्दुत्व’ का झण्डा उठाये घूम रहे हैं, ज़्यादातर तो जानते ही नहीं ‘हिन्दू’ शब्द या ‘हिन्दू धर्म' का क्या इतिहास है!

आइए अब एक बार भारत में बदलते धर्म के स्वरूप पर भी सरसरी निगाह मार लें। गुणाकर मुले अपनी उपरोक्त पुस्तक में लिखते हैं:

“वैदिक आर्यों के भारत में स्थायी हो जाने के बाद, यहाँ के विशाल भूभाग पर धीरे-धीरे फैल जाने के बाद, साथ ही यहाँ के मूल निवासियों के साथ घुल-मिल जाने के बाद, वैदिक धर्म तथा रीति-रिवाजों में आमूल परिवर्तन हुए। समाज-व्यवस्था बदली, शासन-प्रणाली बदली, भारत के मूल निवासियों के बहुत से धर्म-तत्व एवं रीति-रिवाज आर्यों ने अपना लिए, रक्त-संकरता बढ़ी। इसी काल में धर्मसूत्रों तथा स्मृति-ग्रन्थों की रचना हुई, समाज के एक वर्ग-विशेष ने अपने निहित स्वार्थों के लिए चातुर्वर्ण्य, पुनर्जन्म आदि की व्यवस्था समाज पर लादी। वेदों की भाषा पुरानी पड़ गयी, तो वेदों को मनमाना अर्थ देने की छूट मिल गयी। देश-काल की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार धर्म का स्वरूप भी बदलता रहता है। वैदिक-कालीन कबीलाई जन-समुदाय के लिए बहुत-सी प्राकृतिक घटनाएँ रहस्यमयी थीं। इसी कारण अग्नि, वायु, वर्षा के देवताओं का जन्म हुआ। वैदिक देवता ऐसी ही घटनाओं का प्रतिनिधित्व करते थे। वर्षा, सन्तान-प्राप्ति, रोग-निवारण, शत्रु-विनाश, धन-समृद्धि, पशु-वृद्धि आदि के लिए उस समय यज्ञ हुआ करते थे। मन्त्र, तन्त्र, जारण-मारण, यज्ञकर्म आदि से देवताओं को खुश करने की कोशिश की जाती थी। ऐसी क्रियाओं वाले धर्म को हम ‘यातु-धर्म’ कहते हैं। अथर्ववेद ऐसी यातु-क्रियाओं से भरा पड़ा है। उपनिषद्-काल में नई आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का उदय हुआ। राजतन्त्र की नींव पड़ चुकी थी। ग़ैर-वैदिक श्रमण-संस्कृति की परम्परा में बौद्ध, जैन आदि नये धर्मों और सम्प्रदायों का उदय हो रहा था। इन नई परिस्थितियों में अब पुराने वैदिक देवता निरर्थक सिद्ध हो रहे थे। ब्राह्मण-पुरोहितों ने वैदिक काल के सबसे बड़े देवता इन्द्र को त्याग दिया; इन्द्र का अण्डकोष गिराकर उसे हत्यारा घोषित कर दिया। उपनिषदकारों ने देवता, ईश्वर, यज्ञकर्म आदि की शव परीक्षा शुरू कर दी। याज्ञवल्क्य ने आगे बढ़कर एक प्रकार से वैदिक देवताओं का ‘क़त्लेआम’ ही कर डाला (बृहदारण्यक उपनिषद)। सामन्ती युग में धर्म का स्वरूप फिर बदला। विष्णु और शिव जैसे वैदिक-अवैदिक देवता देव-सम्राट बना दिये गये और बहुत-से छोटे-मोटे देवता उनके सामन्त व सेवक बने; अर्थात्, उनकी गृहस्थी में शामिल कर दिये गये।”

सारांश यह कि इतिहास में हर चीज़ व परिघटना की तरह धर्म का स्वरूप भी निरन्तर बदलता रहा है। यहाँ हमने गुणाकार मुले के ही शब्दों में कहें तो केवल ‘ब्राह्मण-धर्म’ (ब्राह्मणवाद) की बेहद संक्षिप्त चर्चा की है। मुले इसे ‘ब्राह्मण-धर्म’ इसलिए कहते हैं क्योंकि यह ब्राह्मण-पुरोहितों के हित-साधन के लिए, ब्राह्मण-पुरोहितों द्वारा चलाया हुआ, प्रमुखतः ब्राह्मण-पुरोहितों का धर्म रहा है जो ज़ाहिरा तौर पर उस दौर के शासक वर्गों की विचारधारात्मक ज़रूरत भी था। पर ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा धर्मसूत्रों के काल का धर्म शुद्ध अर्थों में ‘हिन्दू धर्म’ नहीं था, वह ‘वैदिक धर्म’ था, वह वैदिक सूक्तों के आध्यात्मिक परम्परा वाले अर्थों पर आधारित ‘वैदिक कर्मकाण्ड’ वाला धर्म था। उस समय के साहित्य में भी न ‘हिन्दू’ शब्द मिलता है, न ‘हिन्दू धर्म’ शब्द। बौद्ध और जैन धर्मों ने हिन्दू धर्म का नहीं, बल्कि वैदिक कर्मकाण्ड का, यज्ञों में होनेवाली पशुबलि आदि का विरोध किया था।

प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि किसी समय हमारे देश में नास्तिकों की संख्या आस्तिकों से अधिक ही थी। जैन तथा बौद्ध दर्शन, दोनों ही अनीश्वरवादी हैं। न्याय-वैशेषिक और वेदान्त को छोड़कर हमारे सारे पुराने दर्शन मूलतः अनीश्वरवादी ही थे। उत्तरवैदिक काल से हमारे देश में तथाकथित नास्तिकों की एक स्वस्थ चिन्तन-परम्परा मौजूद रही है। इस परम्परा के लिए ‘लोकायत’, अर्थात् जनसमुदाय पर आधारित दर्शन का नाम मिलता है। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन-सभी ने इस परम्परा की अपने ग्रन्थों में भर्त्सना की है। इसी से पता चलता है कि हमारे देश में बुद्धिवादी नास्तिकों की संख्या पुराने ज़माने में काफ़ी ज़्यादा थी। ईश्वर में विश्वास न करनेवाला नास्तिक (नअस्ति; अर्थात्, कोई स्थायी सत्ता, यानी ईश्वर नहीं) है, ऐसा कहकर आज इस शब्द को हेय समझा जाता है। वेदों की निन्दा करने वालों को भी नास्तिक कहा गया (नास्तिको वेदनिन्दकः)। भारत के इतिहास में सिर्फ़ रामायण-महाभारत-गीता जैसे ग्रन्थ ही नहीं लिखे गये, जिसे फ़ासिस्ट इतिहास बताने पर तुले हैं, बल्कि भारत में भौतिकवादी दार्शनिकों की भी एक धारा रही है, जो कि उतनी ही पुरानी है, जितने पुराने सभी धर्मग्रन्थ रहे हैं। लेकिन इस इतिहास के बारे में हमें कभी नहीं बताया जाता है और इस समूची भौतिकवादी परम्परा को ही ग़ायब करने का सचेतन तौर पर प्रयास किया जाता है। भारत के इतिहास में भी जनता के बीच से उपजी परम्परा रही है, जिसे ‘लोकायत-चार्वाक’ नाम से जाना जाता है। इस इतिहास को जानने की और उसकी हिफ़ाज़त करने की ज़िम्मेदारी आज हमारी है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद काग़ज़ी बाघ है

• माओ त्से-तुङ

(14 जुलाई 1956)

(चीनी क्रान्ति के नेता माओ त्से-तुङ की इस बात को लगभग सत्तर वर्ष हो चुके हैं और इस बीच दुनिया की परिस्थितियों में बहुत-से बदलाव आये हैं, लेकिन माओ की बात अपने सार रूप में आज भी उतनी ही सही है। अमेरिका अपनी सैन्य शक्ति के बल पर अनेक देशों पर हमले करता रहा है, दुनियाभर में उसके दर्जनों सैन्य अड्डे हैं और नये से नये घातक हथियार उसके पास हैं। लेकिन इन सबके बावजूद वह अन्दर से खोखला होता जा रहा है।

जिस समय माओ ने यह बात कही थी, उस समय अमेरिका और भी शक्तिशाली दिखता था लेकिन उसके एक साल के भीतर ही उसे कोरिया में मुँहकी खानी पड़ी। फिर कुछ सालों के बाद एक और छोटे-से देश वियतनाम की ग़रीब जनता ने अमेरिकी सेना को अपने देश से बुरी तरह खदेड़कर भगाया। अफ़ग़ानिस्तान में वर्षों तक भयानक तबाही मचाने के बाद भी अमेरिका को कुछ हासिल नहीं हुआ और उसे हारकर उन्हीं तालिबान को सत्ता सौंपकर भागना पड़ा जिन्हें ख़त्म करने के नाम पर वह वहाँ गया था। इराक़ में लाखों लोगों को मौत के घाट उतारने के बाद भी अमेरिका आख़िरकार लुटपिटकर वापस गया। अमेरिका की पूरी सैन्य मदद के बावजूद इज़रायल ग़ज़ा की छोटी-सी आबादी को भी हरा नहीं पाया है और बौखलाहट में बर्बरतम जनसंहार करने के बावजूद वहाँ अपना एक भी मकसद पूरा करने में नाकाम रहा है। अभी ईरान ने अमेरिका की तमाम घुड़कियों के बावजूद इज़रायल के छक्के छुड़ा दिये और उसके सरपरस्त अमेरिका के भी दाँत खट्टे कर डाले।

माओ ने जिन साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्षों की चर्चा की है वे सभी राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष थे। ज़ाहिर है कि आज राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों का दौर बीत चुका है और पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्तियों का दौर अभी शुरू नहीं हुआ है। लेकिन माओ की यह बात आज भी बिल्कुल सही है कि आज जो छोटा है, कल वह बड़ा हो जायेगा।

इतने साल बीतने के बाद भी अगर अमेरिका आज दुनिया का चौधरी बनने की हनक दिखा रहा है तो इसके लिए बहुत हद तक वे संशोधनवादी ज़िम्मेदार हैं जिन्होंने दुनिया में क्रान्तियों की आगे बढ़ती धारा को शान्तिवाद के गड्ढे में गिरा दिया और बढ़ते समाजवादी शिविर को छिन्न-भिन्न करके पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को कुछ समय के लिए फिर संजीवनी दे दी। लेकिन पूँजीवाद की लाइलाज बीमारियाँ उसे निरन्तर कमज़ोर करती जा रही हैं। बुढ़ाते शरीर की कमज़ोरी को छिपाने के लिए साम्राज्यवादी और भी ज़ोर से अपने हथियार खड़खड़ा रहे हैं। लेकिन उनकी हक़ीक़त अब पहले से ज़्यादा लोगों के सामने उजागर होती जा रही है। इस नज़रिये से माओ का यह लेख आज फिर से पढ़ा जाना चाहिए। – सं.)

अमेरिका दूसरे देशों के ख़िलाफ़ आक्रमणकारी कार्रवाइयाँ करने के उद्देश्य से हर जगह कम्युनिस्ट-विरोधी पताका घुमा रहा है।

अमेरिका को हर जगह क़र्ज़ा चुकाना है। उसे न केवल लातिन अमेरिका, एशिया और अफ़्रीका के देशों का क़र्ज़ा चुकाना है, बल्कि यूरोप और ओशेनिया के देशों का क़र्ज़ा भी चुकाना है। समूची दुनिया, जिसमें ब्रिटेन भी शामिल है, अमेरिका को नापसन्द करती है। व्यापक जन-समुदाय उसे नापसन्द करता है। जापान अमेरिका को इसलिए नापसन्द करता है क्योंकि वह उसका उत्पीड़न करता है। पूर्व का कोई भी देश अमेरिकी आक्रमण से मुक्त नहीं है। अमेरिका ने हमारे ताइवान प्रान्त पर आक्रमण किया है। जापान, कोरिया, फ़िलिपीन, वियतनाम और पाकिस्तान ये सभी देश अमेरिकी आक्रमण से पीड़ित हैं, हालाँकि इनमें से कुछ देश अमेरिका के संश्रयकारी भी हैं। जनता असन्तुष्ट है और कुछ देशों में शासक भी असन्तुष्ट हैं।

सभी उत्पीड़ित राष्ट्र स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं।

हर चीज़ परिवर्तनशील है। बड़ी ह्रासोन्मुख शक्तियों का स्थान छोटी नवोदित शक्तियाँ ले लेंगी। छोटी शक्तियाँ बड़ी शक्तियों में बदल जायेंगी, क्योंकि बहुसंख्य जनता इस परिवर्तन की माँग करती है। अमेरिकी साम्राज्यवादी शक्तियाँ बड़ी से छोटी होती जायेंगी, क्योंकि अमेरिकी जनता भी अपनी सरकार से असन्तुष्ट है।

मैं अपने जीवन काल में ऐसे परिवर्तन स्वयं देख चुका हूँ। यहाँ मौजूद हममें से कुछ लोग छिङ राजवंश के काल में पैदा हुए हैं तथा कुछ अन्य लोग 1911 को क्रान्ति के बाद पैदा हुए हैं।

छिङ राजवंश का तख़्ता बहुत पहले ही पलटा जा चुका है। उसे किसने पलटा, उसे सुन यात-सेन के नेतृत्व में काम करने वाली पार्टी ने जनता के साथ मिलकर पलटा सुन यात-सेन की शक्तियाँ इतनी छोटी थीं कि छिङ अफसर उन्हें नाचीज़ समझते रहे। उन्होंने बहुत से विद्रोहों का नेतृत्व किया, जो हर बार असफल रहे। लेकिन अन्त में सुन यात-सेन ने ही छिङ राजवंश का तख़्ता पलट दिया। बड़ी शक्ति कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिससे डरा जाये। बड़ी शक्तियों का तख़्ता छोटी शक्तियों द्वारा पलट दिया जायेगा। छोटी शक्तियाँ बड़ी शक्तियाँ बन जायेंगी। छिङ राजवंश का तख़्ता पलट देने के बाद, सुन यात-सेन को पराजय का सामना करना पड़ा। कारण, वे जनता की माँगों को पूरा करने में असफल रहे, जैसे उसकी जमीन की माँग और साम्राज्यवाद का विरोध करने की माँग। न ही उन्होंने प्रतिक्रान्तिकारियों के दमन की आवश्यकता को समझा, जो उन दिनों आज़ादी से इधर-उधर घूम रहे थे। बाद में उन्हें उत्तरी युद्ध-सरदारों के सरगना यूवान शिह-काई के हाथों हार खानी पड़ी। युवान शिह-काई की शक्तियाँ सुन यात-सेन की शक्तियों से बड़ी थीं। यहाँ फिर वही नियम लागू होता है – जनता के साथ नाता जोड़ने वाली छोटी शक्तियाँ मज़बूत बन जाती हैं, जबकि जनता का विरोध करने वाली बड़ी शक्तियाँ कमज़ोर पड़ जाती हैं। आगे चलकर सुन यात-सेन के बुर्जुआ-जनवादी क्रान्तिकारियों ने हम कम्युनिस्टों के साथ सहयोग किया तथा हम दोनों ने साथ मिलकर युवान शिह-काई द्वारा छोड़ी गयी युद्ध-सरदारों की व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया।

चीन में च्याङ काई-शेक के शासन को सभी देशों की सरकारों से मान्यता प्राप्त हुई और वह बाईस वर्ष तक जारी रहा तथा उसकी शक्ति सबसे बड़ी थी। हमारी शक्ति बहुत छोटी थी, पहले हमारे पास पचास हज़ार पार्टी सदस्य थे, लेकिन प्रतिक्रान्तिकारी दमनचक्र के बाद कुछ ही हज़ार बाकी रह गये। दुश्मन ने हर जगह गड़बड़ी पैदा की। यहाँ फिर वही नियम लागू हुआ – बड़ी और मज़बूत शक्तियाँ अन्त में इसलिए पराजित हो गयीं क्योंकि वे जनता से अलग-थलग रहीं, जबकि छोटी व कमज़ोर शक्तियाँ इसलिए विजयी हुईं, क्योंकि उन्होंने जनता के साथ नाता जोड़ लिया और उसके हित में काम किया। अन्त में ठीक यही परिणाम हुआ।

जापानी आक्रमण विरोधी युद्ध के दौरान जापान बहुत शक्तिशाली था, क्वोमिन्ताङ सेनाओं को दूरवर्ती प्रदेशों में खदेड़ दिया गया था, और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में काम करने वाली सशस्त्र सैन्य शक्तियाँ भी केवल दुश्मन के पृष्ठभाग में स्थित ग्रामीण क्षेत्रों में ही छापामार युद्ध चला सकती थीं। जापान ने पेकिङ, त्येन्तसिन, शांघाई, नानकिङ, वुहान और क्वाङचओ जैसे बड़े-बड़े चीनों शहरों पर क़ब्ज़ा कर लिया था। लेकिन जर्मनी के हिटलर की तरह जापानी सैन्यवादियों को भी इसी नियम के अनुसार कुछ ही वर्षों में धराशायी होना पड़ा।

हमें अनगिनत कठिनाइयों से गुज़रना पड़ा और हमें दक्षिण से उत्तर की तरफ़ खदेड़ दिया गया, जबकि हमारी सैन्य शक्ति कई लाख से घटकर दसियों हज़ार तक रह गयी। 25,000 ली (लगभग 12,500 किमी) के लम्बे अभियान के अन्त में हमारे पास केवल 25,000 आदमी बचे रह गये।

हमारी पार्टी के इतिहास में अनेक ग़लत “वामपंथी” और दक्षिणपंथी लाइनें सामने आयी हैं। इनमें सबसे ज़्यादा गम्भीर थीं छन तू-श्यू की दक्षिणपंथी भटकाव की लाइन और वाङ मिङ की “वामपंथी” भटकाव की लाइन। इनके अलावा चाङ क्वो-ताओ, काओ काङ और अन्य लोगों ने भी दक्षिणपंथी भटकाव की ग़लतियाँ कीं।

ग़लतियों का एक अच्छा पहलू भी होता है, क्योंकि वे जनता और पार्टी को शिक्षित कर सकती हैं। हमारे पास नकारात्मक उदाहरण से शिक्षा देने वाले बहुत से शिक्षक हैं, जैसे जापान, अमेरिका, च्याङ काई-शेक, छन तू-श्यू. ली ली-सान, वाङ मिङ, चाङ क्वो-ताओ और काओ काङ। नकारात्मक उदाहरण से शिक्षा देने वाले इन शिक्षकों से सीखने के लिए हमने बहुत बड़ी कीमत चुकायी है। अतीत में, ब्रिटेन ने हमारे ख़िलाफ़ कई बार युद्ध किया। ब्रिटेन, अमेरिका, जापान, फ़्रांस, जर्मनी, इटली, ज़ारशाही रूस और हॉलैण्ड, ये सभी हमारी भूमि पर नज़र गड़ाये हुए थे। ये सभी नकारात्मक उदाहरण से शिक्षा देने वाले हमारे शिक्षक थे और हम उनके शिष्य थे।

प्रतिरोध युद्ध के दौरान जापान के ख़िलाफ़ लड़ते-लड़ते हमारे सैनिकों की संख्या बढ़ती गयी और 9,00,000 तक पहुँच गयी। उसके बाद मुक्ति युद्ध शुरू हुआ। हमारे हथियार क्वोमिन्ताङ के हथियारों के मुकाबले घटिया क़िस्म के थे। उस समय क्वोमिन्ताङ की सैन्य शक्ति चालीस लाख थी, लेकिन तीन साल की लड़ाई के दौरान हमने कुल मिलाकर उसके अस्सी लाख सैनिकों का सफ़ाया कर दिया। अमेरिकी साम्राज्यवाद की सहायता के बावजूद क्वोमिन्ताङ हमें नहीं हरा सकी। बड़ी और मज़बूत शक्तियाँ विजयी नहीं हो सकतीं, हमेशा छोटी और कमज़ोर शक्तियाँ ही विजयी होती हैं।

इस समय अमेरिकी साम्राज्यवाद काफी शक्तिशाली है, लेकिन वास्तव में वह ऐसा नहीं है। वह राजनीतिक रूप से बहुत कमज़ोर है, क्योंकि वह व्यापक जन समुदाय से अलग-थलग है तथा उसे हर कोई नापसन्द करता है और अमेरिकी जनता भी नापसन्द करती है। देखने में तो वह बहुत शक्तिशाली मालूम होता है, लेकिन वास्तव में वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिससे डरा जाये। वह एक काग़ज़ी बाघ है। बाहर से देखने पर तो यह एक बाघ मालूम होता है, लेकिन वास्तव में यह काग़ज़ से बना हुआ है तथा आँधी-वर्षा का सामना करने में असमर्थ है। मैं समझता हूँ कि अमेरिका महज़ एक काग़ज़ी बाघ है।

समूचा इतिहास, वर्ग-समाज का हज़ारों वर्षों का इतिहास इस बात को साबित कर चुका है: मज़बूत शक्तियों का स्थान अनिवार्य रूप से कमज़ोर शक्तियाँ ले लेती हैं। यह बात दोनों अमेरिका महाद्वीपों के बारे में भी सच है।

जब साम्राज्यवाद को नेस्तनाबूद कर दिया जायेगा, केवल तभी शान्ति क़ायम हो सकती है। वह दिन ज़रूर आयेगा जब काग़ज़ी बाघों का सफ़ाया कर दिया जायेगा। लेकिन वे अपने आप ख़त्म नहीं हो जायेंगे, उन पर आँधी-वर्षा के थपेड़े पड़ना ज़रूरी है।

जब हम यह कहते हैं कि अमेरिकी साम्राज्यवाद एक काग़ज़ी बाघ है तो हम यह बात रणनीति की दृष्टि से कहते हैं। सम्पूर्ण रूप से हमें उसे नाचीज़ समझना चाहिए। लेकिन अलग-अलग अंशों की दृष्टि से हमें उसे गम्भीरता से लेना चाहिए। उसके पंजे और दाँत हैं। हमें उसे अंश-अंश करके नष्ट करना है। उदाहरण के लिए, अगर उसके दस दाँत हों, तो पहली बार एक दाँत तोड़ दो, बाकी नौ रह जायेंगे, दूसरी बार एक दाँत और तोड़ दो, तब बाक़ी आठ रह जायेंगे। जब सब दाँत तोड़ दिये जायेंगे, फिर भी पंजे बाकी रह जायेंगे। अगर हम उससे क़दम-ब-क़दम और संजीदगी के साथ निपटेंगे तो अन्त में निश्चित रूप से सफल हो जायेंगे।

रणनीति की दृष्टि से हमें अमेरिकी साम्राज्यवाद को बिलकुल नाचीज़ समझना चाहिए। रणकौशल की दृष्टि से हमें उसे गम्भीरता से लेना चाहिए। उसके ख़िलाफ़ संघर्ष करते समय हमें हर लड़ाई को, हर मुठभेड़ को गम्भीरता से लेना चाहिए। इस समय अमेरिका शक्तिशाली है, लेकिन यदि व्यापक नज़रिए से, सम्पूर्ण रूप से और दीर्घकालिक दृष्टि से देखा जाये तो उसे जनता का समर्थन प्राप्त नहीं है, जनता उसकी नीतियों को नापसन्द करती है, क्योंकि वह जनता का उत्पीड़न और शोषण करता है। यही कारण है कि इस बाघ का सर्वनाश होना निश्चित है। अतएव वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिससे डरा जाये, और उसे नाचीज़ समझा जा सकता है। लेकिन अमेरिका के पास आज भी ताक़त है, वह प्रतिवर्ष 10 करोड़ टन से ज़्यादा इस्पात पैदा करता है और हर जगह प्रहार करता है। यही कारण है कि हमें उसके ख़िलाफ़ अपना संघर्ष जारी रखना होगा, अपनी पूरी शक्ति से लड़ना होगा और एक के बाद एक मोर्चा फ़तह करते जाना होगा। और इसमें समय लगेगा।

ऐसा लगता है कि अमेरिका महाद्वीपों तथा एशिया और अफ़्रीका के देशों को अन्त तक, जब तक काग़ज़ी बाघ आँधी-वर्षा से नष्ट नहीं हो जाता, संयुक्त राज्य अमेरिका के ख़िलाफ़ लड़ते रहना होगा।

अमेरिकी साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए, लातिन अमेरिकी देशों में यूरोपीय मूल के लोगों को उन देशों के मूल निवासियों के साथ एकता क़ायम करनी चाहिए। शायद यूरोप से वहाँ आकर बसने वाले गोरे लोगों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, पहली श्रेणी में शासक हैं और दूसरी श्रेणी में शासित। इससे उत्पीड़ित गोरी जनता के लिए स्थानीय जनता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना आसान हो जायेगा, क्योंकि उनकी स्थिति भी स्थानीय जनता जैसी ही है।

लातिन अमेरिका, एशिया और अफ़्रीका के हमारे दोस्त भी हमारी ही जैसी स्थिति में हैं और हमारे ही जैसा काम कर रहे हैं, साम्राज्यवाद के उत्पीड़न को कम करने के उद्देश्य से जनता के लिए काम कर रहे हैं। अगर हम अच्छी तरह काम करेंगे तो साम्राज्यवादी उत्पीड़न को जड़मूल से समाप्त कर सकेंगे। इस मसले पर हम सब एक दूसरे के साथी हैं।

साम्राज्यवादी उत्पीड़न के विरोध की हमारी प्रकृति भी आपके ही समान है, केवल भौगोलिक स्थिति, राष्ट्रीयता और भाषा में भिन्नता है। लेकिन साम्राज्यवाद से हमारी प्रकृति बिलकुल भिन्न है, और उसे देखते ही हमें उबकाई आती है।

साम्राज्यवाद की आख़िर क्या उपयोगिता है? चीनी जनता को उसकी ज़रूरत नहीं, और न ही दुनिया के दूसरे देशों की जनता को उसकी ज़रूरत है। साम्राज्यवाद का अस्तित्व क़ायम रहने का कोई कारण नहीं है।

(यह लातिन अमेरिका के दो गण्यमान्य व्यक्तियों के साथ माओ की बातचीत का एक अंश है)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 27

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 1 (जारी)

पूँजी के परिपथ (सर्किट)

● अभिनव

सम्पूर्णता में मुद्रा-पूँजी का परिपथ

मुद्रा-पूँजी के परिपथ का सर्वाधिक विस्तार से अध्ययन आवश्यक था क्योंकि औद्योगिक या आम तौर पर उद्यमी पूँजी के रूप को सम्पूर्णता और सटीकता से मुद्रा-पूँजी का परिपथ ही प्रदर्शित करता है। पूँजीपति की पूँजी बाज़ार में सबसे पहले मुद्रा-रूप में ही प्रकट होती है, न कि माल-रूप में। न ही वह सीधे उत्पादक-पूँजी के तत्वों के रूप में पूँजीपति के हाथों में पहले से मौजूद होती है। इसलिए मुद्रा-पूँजी का परिपथ आम तौर पर पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया को उसकी सम्पूर्णता में रेखांकित करता है। इसके बाद अगले अध्याय में हम संक्षेप में उत्पादक-पूँजी के परिपथ और माल-पूँजी के परिपथ का भी संक्षिप्त अध्ययन करेंगे क्योंकि पूँजीवादी पुनरुत्पादन की समूची प्रक्रिया को समझने के लिए यह अपरिहार्य है। लेकिन मुद्रा-पूँजी का परिपथ इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उत्पादक-पूँजी व माल-पूँजी के परिपथ मुद्रा-पूँजी के परिपथ के दुहराव से ही निकलते हैं। अब जबकि हम मुद्रा-पूँजी के परिपथ के तीनों चरणों को विस्तार से समझ चुके हैं, तो हम इस चर्चा का समाहार कर सकते हैं।

सबसे पहली बात यह है कि मुद्रा-पूँजी के परिपथ ($M - C < {}^{l}_{mp} \ldots P \ldots C' - M'$) में हम मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप में देखते हैं। इसमें सबसे पहले पूँजीपति अपनी मुद्रा-पूँजी से कुछ निश्चित माल, यानी उत्पादन के साधन और मज़दूरों की श्रमशक्ति को ख़रीदता है। इसके बाद, उत्पादक-पूँजी के तत्वों के तौर पर ये माल उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादक उपभोग से गुज़रते हैं। इसके नतीजे के तौर पर पूँजीपति के हाथों में उत्पादित माल होता है, जो अपने भौतिक रूप और मूल्य दोनों में ही मुद्रा-पूँजी द्वारा पहले चरण में ख़रीदे गये मालों से भिन्न होते हैं। वे श्रम प्रक्रिया और मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया से गुज़र चुके होते हैं। परिपथ का समापन इन उत्पादित मालों के बिकने और मुद्रा-रूप में मूल्य-संवर्धित पूँजी के वापस पूँजीपति के हाथों में लौटने से होता है। अगर हम केवल संचरण की श्रृंखला की बात करें तो यह पूँजी के आम सूत्र यानी M – C – M’ को ही चिह्नित करता है। लेकिन M – C – M’ का आम सूत्र व्यापारिक पूँजी पर भी लागू होता है, जो मालों के उत्पादन से अपने आप में कोई सरोकार नहीं रखती है। व्यापारी पहले माल को कम क़ीमत पर ख़रीदता है और फिर उसी माल को अधिक क़ीमत पर बेचता है। ख़रीद-क़ीमत और बिकवाली क़ीमत के अन्तर से ही उसका मुनाफ़ा आता है। चूँकि व्यापारिक पूँजी के सूत्र और औद्योगिक पूँजी के सम्पूर्ण परिपथ में, सिर्फ़ संचरण के आधार पर देखें, तो समानता दिखती है, यानी पूँजीपति जितना पूँजी-मूल्य निवेश में लगाता है, बिकवाली से उससे ज़्यादा मूल्य उसके पास मुद्रा-रूप में वापस आता है। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि औद्योगिक पूँजी का परिपथ व्यापारिक पूँजी के आम सूत्र में ही शामिल है, या उसके ही समान है।

लेकिन औद्योगिक पूँजी के परिपथ में M – C और C’ – M’ समतुल्यों का ही विनिमय होता है। यानी, सामाजिक तौर पर, M – C में और साथ ही C’ – M’ में मुद्रा और माल बराबर मूल्य के होते हैं और फिर भी C’ का मूल्य C से ज़्यादा होता है। यहाँ मुनाफ़ा व्यापारी और उत्पादक के बीच असमान विनिमय पर आधारित नहीं होता है। यह मूल्य-संवर्धन तभी समझा जा सकता है, जब हम मुद्रा-पूँजी के परिपथ के दूसरे चरण यानी P या उत्पादक-पूँजी के चरण को समझें। इस चरण में उत्पादक-पूँजी के तत्व यानी उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति उत्पादक उपभोग से गुज़रते हैं। इस प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों का मूल्य ज्यों का त्यों उत्पादित माल में स्थानान्तरित होता है, जबकि श्रमशक्ति अपने मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करने के अलावा बेशी मूल्य भी पैदा करती है। नतीजतन, मूल्य-संवर्धन होता है।

इसके अलावा, उत्पादन के साधनों में श्रम के उपकरणों का इस्तेमाल मज़दूर कच्चे माल पर कर उसका भौतिक रूप बदल देते हैं और एक ऐसा माल पैदा करते हैं जिसका उपयोग-मूल्य उन मालों से बिल्कुल भिन्न होता है, जिन मालों को शुरुआत में पूँजीपति ने अपनी मुद्रा-पूँजी से ख़रीदा था, यानी श्रमशक्ति और उत्पादन के साधन। इसलिए मार्क्स बताते हैं कि उत्पादक-पूँजी का चरण वास्तविक रूपान्तरण (real metamorphosis) का चरण है जबकि संचरण के दोनों चरण, पहला, जिससे मुद्रा-पूँजी का परिपथ शुरू होता है और, दूसरा, जिससे वह पूरा होता है, केवल रूपगत या औपचारिक रूपान्तरण (formal metamorphosis) के चरण होते हैं। उत्पादक-पूँजी के चरण में श्रम प्रक्रिया और मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया के ज़रिये भौतिक रूप और मूल्य में भिन्न एक नया माल पैदा होता है और संचरण के दोनों ही चरणों में समतुल्यों का विनिमय होता है और मुद्रा माल का रूप ले लेती है या माल मुद्रा का रूप ले लेता है। यानी, संचरण के क्षेत्र में बदलाव केवल रूपगत होता है।

जो पूँजी संचरण और उत्पादन दोनों के चरणों से गुज़रती है, वही औद्योगिक या उद्यमी पूँजी होती है। संचरण के चरणों में वह माल-पूँजी या मुद्रा-पूँजी का रूप लेती है। उत्पादन के चरण में वह उत्पादक-पूँजी के तत्वों का रूप लेती है। इन चरणों से गुज़रते हुए पूँजी का मूल्य न सिर्फ़ क़ायम रहता है, बल्कि बढ़ता है। मुद्रा-पूँजी, माल-पूँजी व उत्पादक-पूँजी तीन अलग प्रकार की पूँजियाँ नहीं है, बल्कि वे प्रकार्यात्मक रूप हैं जो औद्योगिक पूँजी अपने परिपथ के विभिन्न चरणों से गुज़रते हुए लेती है। पूँजी का इन तीनों चरणों से बिना रुके गुज़रना अनिवार्य है। अगर प्रक्रिया पहले चरण में रुक जाती है, मुद्रा-पूँजी महज़ मुद्रा का एक ढेर बनकर रह जायेगी; अगर यह परिपथ दूसरे चरण में रुकता है तो उत्पादन के साधन बेकार पड़े रहेंगे और मज़दूर ख़ाली बैठे रहेंगे; अगर प्रक्रिया तीसरे चरण में रुक जाती है तो माल गोदाम में पड़े रह जायेंगे, बिकेंगे नहीं और संचरण की प्रक्रिया ही बाधित हो जायेगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि हर चरण में पूँजी का अपना एक विशिष्ट रूप होता है और उस रूप में पूँजी को कुछ निश्चित प्रकार्य पूरे करने होते हैं। मुद्रा-पूँजी के तौर पर वह उन्हीं प्रकार्यों को पूरा कर सकती है जिनकी इजाज़त मुद्रा-रूप पूँजी को देता है; उसी प्रकार माल-पूँजी के रूप में वह उन्हीं प्रकार्यों को पूरा कर सकती है जो माल के प्रकार्य होते हैं और उत्पादक-पूँजी के तत्वों के रूप में वह उन्हीं प्रकार्यों को पूरा कर सकती है, जो यह रूप पूँजी को करने की अनुमति देता है। हर चरण में पूँजी कुछ समय तक रुकती है, इन प्रकार्यों को पूरा करती है और फिर एक नये रूप में अगले चरण में प्रवेश करती है।

मार्क्स बताते हैं कि अपने उदाहरण में हमने यह मान लिया था कि उत्पादन के साधनों का पूरा का पूरा मूल्य एक बार में ही उत्पादित माल में स्थानान्तरित हो जाता है। वास्तव में ऐसा बिरले ही होता है। उत्पादन की अधिकांश शाखाओं में उत्पादन के साधनों में से अचल पूँजी के तत्व, यानी इमारतें, मशीनरी, श्रम के अन्य उपकरण आदि एक बार में अपना समूचा मूल्य उत्पादित माल में स्थानान्तरित नहीं करते, बल्कि यह प्रक्रिया अंशों में होती है। इसकी गणना आसानी से की जा सकती है क्योंकि हर श्रम के उपकरण की उत्पादन की औसत दर से जारी प्रक्रिया में एक निश्चित दर पर घिसाई होती है और उसकी एक उम्र होती है। नतीजतन, उत्पादन के प्रत्येक चक्र में उत्पादन के ऐसे साधन कितना मूल्य माल में स्थानान्तरित करते हैं, हर पूँजीपति इसकी गणना करता ही है और अपने माल की क़ीमत में घिसाई-मूल्य (depreciation value) को शामिल करता है। इसलिए इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि उत्पादन के साधन, विशेषकर श्रम के उपकरण व अवरचनागत तत्व अपना कितना मूल्य एक बार में माल में स्थानान्तरित करते हैं। मार्क्स लिखते हैं:

> “हमारे उदाहरण में, उत्पादक पूँजी के मूल्य यानी 422 पाउण्ड में केवल कारखाना इमारत, मशीनरी, आदि की औसत आकलित घिसाई शामिल थी, और इस प्रकार उनके मूल्य का केवल वह हिस्सा शामिल था जो 10,000 एल.बी. कच्चे सूत को 10,000 एल.बी. सूत के धागों में, जो कि साठ घण्टों की एक सप्ताह जारी रहने वाली कताई की प्रक्रिया का उत्पाद है, तब्दील करने की प्रक्रिया के दौरान स्थानान्तरित होता है। उन उत्पादन के साधनों में, जिनमें स्थिर पूँजी को रूपान्तरित किया गया था, श्रम के उपकरण यानी इमारतें, मशीनरी, आदि, मानो इस प्रकार शामिल हुए थे जैसे उन्हें साप्ताहिक भुगतान के बदले में बाज़ार से किराये पर उठाया गया था। फिर भी, जहाँ तक मामले के सारतत्व का प्रश्न है, इससे कोई भी फ़र्क नहीं पड़ता है। हमें केवल 10,000 एल.बी. सूत के धागों के साप्ताहिक उत्पाद को दिये गये वर्षों की श्रृंखला से गुणा कर देना होगा, और उस दौर में ख़रीदे गये और ख़र्च हो गये श्रम के उपकरणों का पूरा मूल्य मालों में स्थानान्तरित हो चुका होगा।” (*वही*, पृ. 133-34, *अनुवाद हमारा*)

उत्पादक-पूँजी के चरण के पूर्ण हुए बिना पूँजीपति के हाथों में उत्पादित माल यानी C’ नहीं आ सकता है और उसके बिना वह उसे बेचकर बेशी मूल्य समेत अपने पूँजी-मूल्य को वापस प्राप्त नहीं कर सकता है और इस प्रकार मुनाफ़ा हासिल नहीं कर सकता है। लेकिन उत्पादन की सभी शाखाओं में माल कोई स्पर्श करने योग्य भौतिक रूप धारण नहीं करता है। मिसाल के तौर पर, संचार व परिवहन उद्योग में माल कोई उपयोगी भौतिक वस्तु नहीं बल्कि एक उपयोगी प्रभाव या सेवा होता है। मार्क्स यहाँ परिवहन उद्योग पर जो प्रेक्षण रखते हैं, उन्हें आज के दौर में तमाम उपयोगी सेवाओं पर लागू किया जा सकता है जो वास्तव में माल-उत्पादन ही हैं और इस प्रकार समाज में उत्पादक श्रम की श्रेणी में ही आती हैं। ज़ाहिर है, *सभी सेवाएँ उत्पादक श्रम का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं,* मसलन, बैंकिंग, बीमा, आदि। ये केवल उत्पादित मूल्य का पुनर्वितरण करती हैं, कोई नया मूल्य नहीं पैदा करतीं और न ही समाज की समृद्धि में कोई इज़ाफ़ा करती हैं। *लेकिन परिवहन, संचार आदि की सेवाएँ निश्चित तौर पर मूल्य व उपयोग-मूल्य का उत्पादन करती हैं और उत्पादक श्रम की श्रेणी में आती हैं।* आज ऐसे और भी कई माल हैं जो कोई स्पर्शनीय भौतिक वस्तु नहीं हैं, मसलन, सॉफ्टवेयर। लेकिन सॉफ्टवेयर उद्योग व परिवहन तथा संचार उद्योग में अन्तर है क्योंकि सॉफ्टवेयर उद्योग में माल का उत्पादन व उपभोग एक साथ घटित होने वाली प्रक्रिया नहीं हैं। मार्क्स परिवहन उद्योग के बारे में लिखते हैं:

> “लेकिन परिवहन उद्योग जो चीज़ बेचता है वह स्वयं स्थान में होने वाला वास्तविक परिवर्तन है। उत्पादित होने वाला यह उपयोगी प्रभाव अभिन्न रूप से परिवहन की प्रक्रिया से, यानी, परिवहन उद्योग की विशिष्ट उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। लोग और माल परिवहन के माध्यम से एक साथ यात्रा करते हैं, और यह यात्रा, यानी परिवहन के साधन की स्थानिक गति ही परिवहन उद्योग द्वारा अंजाम दी जाने वाली उत्पादन प्रक्रिया है। इस उपयोगी प्रभाव का उपभोग उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान ही हो सकता है; यह इस प्रक्रिया से अलग किसी वस्तु के रूप में, एक ऐसी वस्तु के रूप में मौजूद ही नहीं होता, जो वाणिज्य की वस्तु के रूप में काम करती हो और केवल अपने उत्पादन के बाद ही माल के रूप में संचरित होती हो। लेकिन इस उपयोगी प्रभाव का विनिमय मूल्य किसी भी अन्य माल के समान उसमें ख़र्च होने वाले उत्पादन के तत्वों के मूल्य (श्रमशक्ति और उत्पादन के साधन) और परिवहन उद्योग में लगे मज़दूरों के बेशी श्रम से पैदा होने वाले बेशी मूल्य के योग से ही निर्धारित होता है। अपने उपभोग के मामले में भी यह उपयोगी प्रभाव बिल्कुल अन्य मालों के समान ही बर्ताव करता है। अगर इसका व्यक्तिगत उपभोग होता है, तो इसका मूल्य इसके उपभोग के साथ ही समाप्त हो जाता है; अगर इसका उत्पादक उपभोग होता है, जिसके कारण यह स्वयं उस माल के उत्पादन का एक चरण है जिसका परिवहन हो रहा है, तो इसका मूल्य उस माल के मूल्य में जुड़ जाता है। इस प्रकार परिवहन उद्योग के लिए सूत्र हो जाता है $M - C < {}^{l}_{mp} \ldots P \ldots M'$ क्योंकि यह उत्पादन की प्रक्रिया से अलग कोई उत्पाद नहीं बल्कि स्वयं उत्पादन की प्रक्रिया ही है जिसके लिए भुगतान किया जाता है और जिसका उपभोग होता है। इसलिए इसका रूप लगभग बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि क़ीमती

(पेज 13 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

(पेज 12 से आगे)

> धातुओं के उत्पादन का होता है, सिवाय इस बात के कि M’ यहाँ उस उत्पादन की प्रक्रिया में पैदा हुए उपयोगी प्रभाव का रूपान्तरित रूप है, न कि सोने या चाँदी का प्राकृतिक रूप जो कि इस प्रक्रिया में पैदा होता है और उससे निकलता है।” (*वही*, पृ. 135, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यहाँ ग़ौर करने वाली बात यह है कि यह केवल औद्योगिक पूँजी ही है जिसका प्रकार्य न सिर्फ़ बेशी उत्पाद या बेशी मूल्य का विनियोजन करना है, बल्कि बेशी उत्पाद व बेशी मूल्य का उत्पादन करना भी है। यानी, औद्योगिक पूँजी का आधार ही उजरती श्रम और पूँजी के बीच का अन्तरविरोध और इसलिए सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग का अन्तरविरोध है। क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन का अर्थ ही यह है कि इसमें एक ओर उत्पादन के साधनों का स्वामी वर्ग खड़ा होता है और दूसरी ओर उत्पादन के साधनों व उपभोग के साधनों से पूर्ण रूप से वंचित सर्वहारा वर्ग होता है, और वे औपचारिक समानता के साथ बाज़ार में मिलते हैं। पूँजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग की श्रमशक्ति उजरत के बदले ख़रीदता है और उसके शोषण के ज़रिये पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया, यानी बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया को अंजाम दिया जाता है।

दूसरी बात यह है कि औद्योगिक पूँजी (उद्यमी पूँजी) के प्रभुत्व के स्थापित होने के बाद उससे पहले अस्तित्व में आये पूँजी के रूप, मसलन व्यापारिक पूँजी और सूदखोर पूँजी, उसके ही मातहत हो जाते हैं और उनकी कार्य-प्रणाली में भी उसके अनुसार बदलाव हो जाते हैं। वास्तव में, अब व्यवसाय की अलग शाखा के तौर पर व्यापारिक पूँजी व सूदखोर पूँजी स्वायत्त नहीं रह जाते बल्कि वे औद्योगिक पूँजी द्वारा संचरण के क्षेत्र में अपनाये जाने वाले विभिन्न रूपों की नुमाइन्दगी मात्र करते हैं। ये महज़ पूँजीपति वर्ग के अन्दरूनी श्रम विभाजन को दिखलाते हैं। व्यापारिक पूँजी का काम होता है औद्योगिक पूँजी द्वारा उत्पादित मालों के विपणन की प्रक्रिया को केन्द्रीकृत करना, सुचारू बनाना और उसकी लागत को कम करना और बदले में औद्योगिक पूँजीपति द्वारा विनियोजित बेशी मूल्य के एक हिस्से को व्यापारिक मुनाफ़े के रूप में प्राप्त करना। दूसरी ओर, मुद्रा-पूँजी में व्यवसाय करने वाले वित्तीय पूँजीपति का अस्तित्व भी औद्योगिक पूँजी द्वारा किये जाने वाले पूँजी संचय पर ही निर्भर करता है, हालाँकि पूँजी के संघनन और संकेन्द्रण के साथ वित्तीय पूँजी की भूमिका पूँजीवादी उत्पादन में बढ़ती जाती है।

औद्योगिक या उद्यमी पूँजी का परिपथ वास्तव में मालों के आम संचरण का ही एक हिस्सा होता है। लेकिन हरेक उद्यमी पूँजी इस आम संचरण के भीतर अपने विशिष्ट परिपथ को बनाये रखती है। उसके परिपथ का पहला और अन्तिम चरण संचरण के क्षेत्र में ही घटित होते हैं, यानी M – C और C’ – M’। लेकिन यहाँ भी उनका विशिष्ट पूँजीवादी चरित्र स्पष्ट होता है क्योंकि पहले चरण में C के तत्व वास्तव में उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति होते हैं, जो उत्पादक उपभोग में जाते हैं। वहीं दूसरे चरण में C’ बेशी मूल्य से लदे उत्पादित मालों की नुमाइन्दगी करता है, जो इसके विशिष्ट पूँजीवादी चरित्र को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार उद्यमी पूँजी का परिपथ मालों के आम संचरण का अंग होते हुए भी, अपनी विशिष्टता को बरक़रार रखता है। जहाँ तक उत्पादन के चरण यानी मुद्रा-पूँजी के परिपथ के दूसरे चरण का सवाल है, तो उसका पूँजीवादी चरित्र आरम्भ से ही स्पष्ट होता है, जहाँ उजरती श्रम के पूँजीपति द्वारा शोषण के ज़रिये बेशी मूल्य का उत्पादन होता है। अन्त में, पूँजीपति द्वारा निवेशित पूँजी-मूल्य बेशी मूल्य समेत अपने मूल रूप, यानी मुद्रा-रूप में पूँजीपति के पास वापस आ जाता है, यानी पूँजीपति मुनाफ़े समेत अपने द्वारा निवेशिक पूँजी को रिकवर कर लेता है।

इस प्रकार, मुद्रा-पूँजी के इस परिपथ के बारे में जो पहली अहम बात है वह यह है कि यह मुद्रा के रूप में पूँजी के प्रवेश से शुरू होता है और फिर मुद्रा के ही रूप में मुनाफ़े समेत पूँजी के वापस पूँजीपति के हाथों में पहुँचने के साथ समापन पर पहुँचता है। $M - C <^{l}_{mp} \ldots P \ldots C' - M'$ को देखते ही जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह कि यहाँ मुद्रा पूँजी के रूप में निवेशित की जा रही है, न कि सामान्य रूप में व्यक्तिगत उपभोग के लिए ख़र्च की जा रही है। पूँजीवादी उत्पादन का लक्ष्य विनिमय मूल्य है, न कि उपयोग मूल्य। चूँकि उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रे बिना “पैसे से पैसा बनाना” सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ उत्पादन का चरण एक अनिवार्य व्यवधान के रूप में प्रकट होता है। पूँजीपति के हिसाब से तो सबसे बेहतर यही होता कि इस “व्यवधान” से गुज़रे बिना ही मुनाफ़ा बटोर लिया जाय। सूदखोर पूँजीपति को ऐसा लगता भी है वह तो बस पैसे से पैसा बना रहा है; व्यापारिक पूँजीपति को भी यह प्रतीत होता है कि वह सस्ता ख़रीदकर महँगा बेच रहा है और इस चतुराई से ही उसका मुनाफ़ा पैदा हो रहा है। लेकिन यह वास्तविकता किसी न किसी स्तर पर हर पूँजीपति को पता चल ही जाती है कि उत्पादन के इस अनिवार्य व्यवधान के बिना “पैसे से पैसा” नहीं बनाया जा सकता है। बहरहाल, चूँकि यह परिपथ मुद्रा से शुरू होकर अधिक मात्रा में मुद्रा पर समाप्त होता है, इसलिए यह पूँजीवादी उत्पादन के लक्ष्य को सबसे स्पष्ट रूप में दिखलाता है : मुनाफ़ा हासिल करना। उत्पादक-पूँजी के परिपथ और माल-पूँजी के परिपथ (जिनका हम आगे अध्ययन करेंगे) में पूँजीवादी उत्पादन का यह लक्ष्य उस स्पष्टता के साथ प्रकट नहीं होता है। P…P या C’…C’ में हमें परिपथ के दोनों छोरों पर अनिवार्यत: मूल्य का इज़ाफ़ा नज़र नहीं आता। M…M’ में मूल्य-संवर्धन और बेशी मूल्य का उत्पादन स्पष्ट तौर पर उत्पादन व संचरण के लक्ष्य के तौर पर नज़र आते हैं। मार्क्स लिखते हैं:

> “एक ओर यह M…M’ सूत्र की चारित्रिक विशिष्टता है कि पूँजी-मूल्य आरम्भ-बिन्दु है और मूल्य-संवर्धित पूँजी वापसी का बिन्दु है, जिससे कि पूँजी-मूल्य का निवेश एक ज़रिये के रूप में प्रकट होता है, जबकि मूल्य-संवर्धित पूँजी-मूल्य समूची कार्रवाई के लक्ष्य के रूप में प्रकट होता है; दूसरी ओर, यह सम्बन्ध मुद्रा-रूप में अभिव्यक्त होता है, यानी स्वतन्त्र मूल्य-रूप में, और इस प्रकार मुद्रा-पूँजी के रूप में, मुद्रा पैदा करने वाली मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त होता है। मूल्य द्वारा बेशी मूल्य का पैदा होना यहाँ न सिर्फ़ प्रक्रिया के आरम्भ और अन्त के रूप में अभिव्यक्त होता है, बल्कि यह चमकते-दमकते मुद्रा-रूप में स्पष्ट रूप में पेश किया जाता है।” (*वही*, पृ. 138, *अनुवाद हमारा*)

और इसी से जुड़ी दूसरी बात यह है कि मुद्रा-पूँजी के परिपथ में मज़दूर और पूँजीपति दोनों का ही व्यक्तिगत उपभोग महज़ अन्तर्निहित रूप में प्रकट होता है। यह परिपथ अपने आप में मज़दूर और पूँजीपति दोनों के ही व्यक्तिगत उपभोग के बारे में कुछ नहीं बताता। मसलन, M – C<lmp में यह निहित है कि पूँजीपति परिवर्तनशील पूँजी को मज़दूरी के रूप में मज़दूर को देता है और उसकी श्रमशक्ति ख़रीदता है, यानी M – L को अंजाम देता है। लेकिन हम देख चुके हैं कि मज़दूर के लिए यह L – M होता है, यानी अपने विशिष्ट माल यानी श्रमशक्ति को पूँजीपति ख़रीदार को बेचना। इससे प्राप्त मुद्रा से मज़दूर अपनी जीविकोपार्जन के लिए अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं को ख़रीदता है। यानी उसके लिए सूत्र होता है L – M – C या C – M – C (क्योंकि L भी पूँजीवादी समाज में एक विशिष्ट माल ही होता है)। लेकिन मुद्रा-पूँजी का परिपथ इस व्यक्तिगत उपभोग को अभिव्यक्त नहीं करता। मज़दूर का व्यक्तिगत उपभोग मुद्रा-पूँजी के परिपथ का अनिवार्य नतीजा अवश्य होता है और इस रूप में इसमें अन्तर्निहित होता है, लेकिन यह उसमें अभिव्यक्त नहीं होता। ज़ाहिर है, मज़दूर द्वारा उसकी श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन पूँजीवादी पुनरुत्पादन की एक पूर्वशर्त है।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि पूँजीपति को भी जीवित रहने के लिए व्यक्तिगत उपभोग करना होता है। लेकिन M’ (M + m) में से, यानी मूल्य-संवर्धित पूँजी के बेशी मूल्य के हिस्से यानी m से वह जितना हिस्सा उपभोग के लिए निकालता है, वह वास्तव में अगले चक्र में उसके द्वारा पूँजी निवेश के निर्णय पर निर्भर करता है, न कि कोई स्वतन्त्र निर्णय होता है। दूसरे शब्दों में, पूँजीपति भी मनमाना उपभोग नहीं करता, बल्कि उसके व्यक्तिगत उपभोग की मात्रा उसके निवेश के निर्णय पर निर्भर करती है। ज़ाहिर है, इसके बावजूद वह एक ऐशो-आराम और ऐय्याशी का जीवन व्यतीत कर सकता है और करता ही है। लेकिन उसके उपभोग के परिमाण की सीमाएँ उसके पुनरुत्पादन के पैमाने और निवेश के निर्णयों पर निर्भर करती हैं और उसी से निर्धारित होती हैं। पूँजीवादी अर्थशास्त्री पूँजीपतियों को अपने उपभोग को न्यूनातिन्यून की सीमा पर रखने की हिदायतें देते हैं ताकि संचय की दर को अधिक से अधिक बढ़ाया जा सके। कुछ यह भी कहते हैं कि पूँजीपति तो बस एक प्रबन्धन मज़दूर के तौर पर अपना वेतन लेता है! यह दीगर बात है कि उसका वेतन मज़दूर की मज़दूरी के समान तय नहीं होता, बल्कि बढ़ती-घटती मुनाफ़े की दर के अनुसार बढ़ता-घटता है और इसके लिए उसे कोई उत्पादक श्रम नहीं करना पड़ता! इस मज़ाकिया बातों पर देर तक गम्भीरता के साथ विचार नहीं किया जा सकता है।

ख़ैर, जो भी हो, पूँजीपति का व्यक्तिगत उपभोग भी M…M’ के परिपथ द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता, बस इसमें अन्तर्निहित होता है। जहाँ यह परिपथ समाप्त होता है, वहाँ से इसका नया चक्र बढ़ी हुई संचित पूँजी के साथ शुरू हो सकता है, या अगर पूँजीपति समूचे बेशी मूल्य को व्यक्तिगत उपभोग में ख़र्च कर दे तो फिर उसके बिना, यानी पहले जितनी ही पूँजी के निवेश होने के साथ शुरू हो सकता है। लेकिन नया परिपथ M से ही शुरू होता है, M’ से नहीं क्योंकि नया परिपथ किस स्तर पर शुरू होगा या कोई पूर्वप्रदत्त तथ्य नहीं होता बल्कि, मुख्यत: और मूलत:, मुनाफ़े की औसत दर और लाभप्रदता की आम गति पर निर्भर करता है। मुद्रा-पूँजी के हर नये परिपथ में पिछले परिपथ में विनियोजित बेशी मूल्य के चिह्न लुप्तप्राय हो जाते हैं। साथ ही, मुद्रा-पूँजी के परिपथ के अन्तिम चरण यानी C’ – M’ के साथ जो माल उपभोग हेतु बाज़ार में ख़रीदे जाते हैं, वे इस मुद्रा-पूँजी के परिपथ से बाहर चले जाते हैं और उपभोग के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। यह उपभोग मुद्रा-पूँजी के परिपथ का हिस्सा नहीं होता।

जैसा कि हमने ऊपर बताया, मुद्रा-पूँजी का परिपथ मालों के आम संचरण का एक अंग होता है। जब पूँजीपति अपनी पूँजी का निवेश कर श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों को ख़रीदता है, तो वह मालों के आम संचरण में हस्तक्षेप करता है। उसी प्रकार, वह अपना उत्पादित माल बेचने का काम भी मालों के आम संचरण के क्षेत्र में ही करता है। निश्चय ही, हर औद्योगिक पूँजी मालों के आम संचरण में अपने विशिष्ट चरित्र को क़ायम रखती है और पूँजीवादी उत्पादन की एक विशिष्ट प्रक्रिया को अंजाम देकर ही बेशी मूल्य का उत्पादन करती है। लेकिन इस पूँजीवादी उत्पादन की स्थितियाँ संचरण के क्षेत्र में ही बनती हैं, क्योंकि वहीं से उत्पादन के तत्व यानी उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति ख़रीदी जाती है और वहीं पर उत्पादित मालों को बेचा जाता है, जिससे कि मूल्य-संवर्धित पूँजी वापस पूँजीपति के पास आती है और वह पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को जारी रख पाता है। इसीलिए मार्क्स ने कहा था कि पूँजी संचरण के क्षेत्र में पूँजी बनती है लेकिन वह संचरण के क्षेत्र से पूँजी नहीं बनती, बल्कि उत्पादन के क्षेत्र से पूँजी बनती है। इसका अर्थ यह है कि मूल्य व बेशी मूल्य के उत्पादन की कार्रवाई उत्पादन के क्षेत्र में ही होती है, लेकिन इस उत्पादन की पूर्वशर्तें संचरण के क्षेत्र में ही पूरी होती हैं (क्योंकि उत्पादन के तत्व पूँजीपति को बाज़ार में ही मिलते हैं) और मूल्य व बेशी मूल्य के वास्तवीकरण का काम भी संचरण के क्षेत्र में ही पूरा होता है (क्योंकि उत्पादित माल बाज़ार में ही बिकता है)। इस द्वन्द्व को न समझने के कारण कई राजनीतिक अर्थशास्त्री और यहाँ तक कि कई तथाकथित मार्क्सवादी अर्थशास्त्री गम्भीर भूलें करते हैं। इसलिए यह समझना अनिवार्य है कि मूल्य और बेशी मूल्य के उत्पादन के बिना उनके वास्तवीकरण का और संचरण का प्रश्न ही अप्रासंगिक हो जाता है और इसलिए उत्पादन की स्थितियाँ ही संचरण की स्थितियों को निर्धारित करती हैं। साथ ही, संचरण का क्षेत्र भी उत्पादन के क्षेत्र को प्रभावित करता है क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन व पुनरुत्पादन की निश्चित पूर्वशर्तें संचरण के क्षेत्र में ही पूरी होती हैं। मार्क्स लिखते हैं:

> “यह तथ्य कि पहला चरण M – C है, यह दिखलाता है कि माल बाज़ार में उत्पादन पूँजी के संघटक तत्वों का मूल क्या है। यह इस बात को भी प्रदर्शित करता है कि पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया की स्थितियाँ संचरण, व्यापार द्वारा तैयार की जाती हैं। मुद्रा-पूँजी का परिपथ केवल माल उत्पादन ही नहीं है; यह संचरण के ज़रिये ही अस्तित्व में आता है और उसका ही पूर्वानुमान करता है। यह बात पहले ही इस तथ्य से सिद्ध हो जाती है कि M का रूप जो कि संचरण के क्षेत्र से ही जुड़ा है निवेश किये जाने वाले पूँजी-मूल्य के पहले और शुद्ध रूप में प्रकट होता है, जो कि परिपथ के अन्य दो रूपों पर लागू नहीं होता है।” (*वही*, पृ. 140, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

बहरहाल, आम तौर पर समूची सामाजिक पूँजी और उसके पुनरुत्पादन को समझने के लिए और साथ ही वैयक्तिक पूँजियों के पुनरुत्पादन को समझने के लिए मुद्रा-पूँजी का परिपथ ही सबसे उपयुक्त होता है, क्योंकि इसमें ही पूँजीवादी उत्पादन का लक्ष्य स्पष्ट तौर पर प्रकट और अभिव्यक्त होता है, यानी बेशी मूल्य का उत्पादन, पैसे से और अधिक पैसा बनाना, मुद्रा-पूँजी की एक मात्रा का निवेश करना और फिर उससे भी ज़्यादा मात्रा में मुद्रा-पूँजी को हासिल करना।

लेकिन अपने आप में देखने पर $M - C <^{l}_{mp} \ldots P \ldots C' - M'$ का एक भ्रामक चरित्र भी होता है। यहाँ परिपथ मूल्य के सार्वभौमिक व स्तवन्त्र रूप यानी मुद्रा के रूप से शुरू होता है और अन्त में मूल्य-संवर्धित पूँजी को मुद्रा के रूप में ही पूँजीपति हासिल करता है। जो बात इसमें सबसे ज़्यादा रेखांकित होती है वह उत्पादन की प्रक्रिया

(पेज 14 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

(पेज 13 से आगे)

द्वारा मूल्य व बेशी मूल्य का पैदा होना नहीं है। वह वास्तव में यह मुद्रा-रूप है, जिसमें पूँजी-मूल्य का निवेश किया जाता है और जिसमें मूल्य-संवर्धित पूँजी को वापस प्राप्त किया जाता है। लेकिन जैसे ही हम पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को सतत् जारी और दुहराई जाने वाली प्रक्रिया के रूप में देखते हैं वैसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पूँजी-मूल्य का मुद्रा-रूप भी उतना ही अस्थायी है, जितना कि इस माल-रूप। अगर हम मुद्रा-पूँजी के परिपथ को बार-बार दुहराई जाने वाली प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, तो वह कुछ ऐसे प्रकट होती है:

$$M–C \ldots \overbrace{P \ldots C'–M'.M–C \ldots}\overbrace{P \ldots C'–M'.M–C \ldots} P \ldots \text{ etc.}$$

जैसे ही हम इस जारी प्रक्रिया पर क़रीबी निगाह डालते हैं हम समझ जाते हैं कि पूँजीवादी पुनरुत्पादन की जारी प्रक्रिया में हम पूँजी के तीन परिपथों को देख सकते हैं। पहला, मुद्रा-पूँजी का परिपथ यानी M…M’, जिसकी विशिष्टताओं पर हम विस्तार में चर्चा कर चुके हैं। दूसरा, उत्पादक-पूँजी का परिपथ यानी P…P जो मुद्रा-पूँजी के दूसरे परिपथ के पूरा होने से पहले ही प्रकट हो जाता है। तीसरा, माल-पूँजी का परिपथ यानी C’…C’; यह भी मुद्रा-पूँजी के दूसरे परिपथ के पूरा होने के पहले ही प्रकट हो जाता है। जब इस प्रक्रिया को एक सतत् जारी प्रवाह के रूप में देखा जाता है, तो हम देखते हैं कि पूँजी-मूल्य हर रूप अस्थायी व क्षणभंगुर है, चाहे वह माल-पूँजी का हो, मुद्रा-पूँजी का हो या फिर उत्पादक-पूँजी का हो। वह आता है और गुज़र जाता है। अपने मूल्य-संवर्धन को जारी रखने के लिए पूँजी-मूल्य को अपनी पोशाकों को बदलते रहना होता है, कभी वह मुद्रा-पूँजी के रूप में मौजूद होती है, कभी उत्पादक-पूँजी के तत्वों के रूप में तो कभी उत्पादित माल-पूँजी के रूप में।

मुद्रा-पूँजी का परिपथ औद्योगिक पूँजी के आम रूप को सटीकता से प्रदर्शित करता है क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के स्थापित प्रभुत्व को दिखलाता है। वजह यह कि उत्पादन के साधनों के पूँजी के तत्व बने बग़ैर और प्रत्यक्ष उत्पादकों के उजरती मज़दूर बने बग़ैर इस परिपथ का पहला चरण भी सम्भव नहीं है। दूसरी बात, यह परिपथ पूँजीवादी उत्पादन के लक्ष्य यानी बेशी मूल्य के उत्पादन को स्पष्ट तौर पर प्रदर्शित करता है। तीसरी बात, यह पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के अन्तरविरोध और उसके पीछे खड़े बुनियादी अन्तरविरोध, यानी श्रम और पूँजी के अन्तरविरोध को साफ़ तौर पर दिखलाता है। यानी, यह पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति द्वारा निर्धारित होने वाली समूची सामाजिक संरचना या समाज को प्रदर्शित करता है।

लेकिन यदि हमें पूँजीवादी पुनरुत्पादन की स्थितियों को सम्पूर्णता में समझना है, तो हमें उत्पादक-पूँजी के परिपथ $(P \ldots C' – M'.M – C <^{|}_{mp} \ldots P)$ और माल-पूँजी के परिपथ

$$(\ldots C' – M'.M – C <^{|}_{mp} \ldots P \ldots C')$$

को भी समझना होगा। इसके बिना, हम उन स्थितियों को नहीं समझ सकते हैं जिनमें पूँजीवादी पुनरुत्पादन होता है और साथ ही उन स्थितियों को जिनमें यह पुनरुत्पादन नहीं हो पाता और पूँजीवादी उत्पादन संकटग्रस्त हो जाता है। वास्तव में, सम्पूर्णता में देखें तो मार्क्स *पूँजी* के दूसरे खण्ड में इसी बुनियादी सवाल का जवाब देते हैं : *पूँजीवादी पुनरुत्पादन की स्थितियाँ और साथ ही वे स्थितियाँ जिनमें पूँजीवादी पुनरुत्पादन नहीं हो पाता*। कहने की आवश्यकता नहीं है कि अगर पूँजीवादी पुनरुत्पादन की स्थितियों की पहचान कर ली जाय तो संकट की स्थितियों की भी पहचान हो जाती है क्योंकि पूँजीवादी आर्थिक संकट और कुछ नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा अपने आपको पुनरुत्पादित कर पाने की सामान्य या आम असफलता का ही दूसरा नाम है।

(अगले अंक में जारी)

विश्व की “चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था” के शोर के पीछे की सच्चाई

(पेज 1 से आगे)

विश्व असमानता लैब की नवीनतम रिपोर्ट ‘भारत में आय और सम्पत्ति असमानता, 1922-2023: अरबपति राज का उदय’ (मार्च 2024) ने बताया कि भारत की शीर्ष 1% आबादी का राष्ट्रीय आय के 22.6% हिस्से पर नियन्त्रण है। शीर्ष 10% आबादी के पास राष्ट्रीय आय का 57.7% हिस्सा है, जबकि निचले 50% के पास केवल 15% हिस्सा है। यह असमानता दुनिया में सबसे अधिक है। साफ़ है कि दुनिया की “चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था” में पूँजीपतियों-धन्नासेठों की तिजोरियों का आकार तो बढ़ता जा रहा है लेकिन आम मेहनतकश आबादी इस “चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था” में तबाही और बरबादी की और गहरी खाई में धकेली जा रही है। यह हास्यास्पद है कि जिस जापान को पीछे छोड़कर चौथी अर्थव्यवस्था होने का दावा किया जा रहा है, वहाँ प्रति व्यक्ति जीडीपी भारत की तुलना में लगभग 11.8 गुना अधिक है।

इसी तरह ग्लोबल हंगर इण्डेक्स के अनुसार दुनिया की “चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था” का भुखमरी के मामले में 127 देशों में 105वाँ स्थान है। ‘नेशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे’ और एनएसएसओ के आँकड़ों के अनुसार भारत में 70% से अधिक मेहनतकश परिवार न्यूनतम पौष्टिक आहार (जैसे दाल, सब्ज़ियाँ और प्रोटीन) ख़रीद पाने में असमर्थ हैं। JAMA नेटवर्क ओपन (12 फरवरी 2024) की हार्वर्ड स्टडी से पता चलता है कि भारत में 67 लाख बच्चे 24 घण्टों में भोजन या दूध से वंचित रहते हैं। इतनी बड़ी अर्थव्यवस्था वाले इस देश की मेहनतकश आबादी आज भी बेहद बुनियादी ज़रूरतों के लिये तरस रही है। हमारे देश में शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतें ख़ासकर पिछले दस सालों में महँगी हुई हैं। शिक्षा की बात करें तो नवभारत टाइम्स (2024) के सर्वेक्षण और ‘नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाइज़ेशन’ (NSSO) के 78वें दौर (2020-21) के डेटा के आधार पर यह बात सामने आ रही है कि शिक्षा पिछले 3 सालों में लगभग 30 से 50 प्रतिशत तक महँगी हुई है। वहीं पर ‘नेशनल हेल्थ अकाउण्ट्स’ 2020-21, गोडिजिट (2024) की रिपोर्ट के आधार पर चिकित्सा भी 50% तक महँगी हो चुकी है। 2014-15 में प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य व्यय ₹4,839 था, जो 2024 तक, अनुमानित ₹10,000 तक पहुँच गया है।

अब एक नज़र इस चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी की स्थिति पर भी डाल लेते हैं। हमारे देश में लगभग 70 करोड़ कार्यशील आबादी में से 28 करोड़ लोगों ने काम ढूढ़ना ही बन्द कर दिया है। ‘पीरियॉडिक लेबर फ़ोर्स सर्वे’ 2023-24 के अनुसार, भारत के कुल कार्यबल का 93% असंगठित क्षेत्र में है जहाँ न तो कोई आर्थिक सुरक्षा है और न ही कोई सामाजिक सुरक्षा। ईटीवी भारत की 2024 की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में दिहाड़ी मज़दूरों को 15 से 20 दिन काम मिलना भी मुश्कित होता है। पिछले दस सालों में आम मेहनतकश आबादी की वास्तविक आय में बमुश्किल 15 से 20% की वृद्धि हुई है लेकिन अगर इस बढ़ी हुई आय को भी मुद्रास्फीति से प्रतिसन्तुलित करें तो साफ़ हो जायेगा हालात और बदतर ही हुए हैं। ‘पीरियॉडिक लेबर फ़ोर्स सर्वे’ 2023-24 और ‘इण्डियन लेबर ऑर्गनाइज़ेशन’ 2024 की रिपोर्ट के अनुसार 2012 में असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे दिहाड़ी मज़दूरों की औसत मासिक आय 3,701 रुपये थी और 2022 में बढ़कर औसत मासिक आय केवल 4,712 हुई। इस भयंकर आर्थिक स्थिति की वजह से भारत में लगभग 60% से ज़्यादा परिवार दवा-इलाज के लिये क़र्ज़ लेने को मजबूर हैं।

इसी तरह विश्व बैंक की रिपोर्ट के आधार पर यह दावा किया गया कि भारत में अत्यधिक ग़रीबी में कमी आयी है। इस दावे पर भी बहुत सवाल खड़े हो रहे हैं। सबसे पहले हम यह समझते हैं कि अत्यधिक ग़रीबी का भारत में मानक क्या है? विश्व बैंक की ही परिभाषा के अनुसार अत्यधिक ग़रीबी वह स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति अपनी बेहद बुनियादी ज़रूरतें जैसे भोजन, स्वच्छ पानी, आवास, और स्वास्थ्य सेवाएँ भी ठीक से नहीं प्राप्त कर पाता है। अब विश्व बैंक ने अपने ताज़ा आँकड़े में यह बताया है कि 2011-12 में 34.4 करोड़ लोग अत्यधिक ग़रीबी में थे जो 2022-23 में घटकर 7.5 करोड़ रह गये यानी कि 26.9 करोड़ लोग अत्यधिक ग़रीबी से बाहर आये। अब अत्यधिक ग़रीबी की परिभाषा के अनुसार हम इसकी जाँच पड़ताल करते हैं कि क्या 2011-12 की तुलना में 2022-23 में लोगों की, ख़ासकर आम मेहनतकश आबादी की, बुनियादी ज़रूरतों को ख़रीदने की क्षमता वाकई में बढ़ी है कि घटी है! उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) के अनुसार, 2011-12 से 2022-23 तक भारत में भोजन की लागत में लगभग 80-100% की वृद्धि हुई। 2024 की ‘द हिन्दू’ की रिपोर्ट के अनुसार अक्टूबर 2023 और अक्टूबर 2024 के बीच औसतन थाली में इस्तेमाल होने वाली सभी सब्ज़ियों की ख़ुदरा क़ीमत में सामूहिक रूप से 89% की वृद्धि हुई है। इस बीच औसत वेतन और मज़दूरी में 9 से 10% की वृद्धि हुई है। 2011-12 की तुलना में 2022-23 में भारत में चिकित्सा लागत में 7-10% की वार्षिक वृद्धि हुई, जो कुल मिलाकर लगभग 100-150% की बढ़ोतरी दर्शाता है। ‘द हिन्दू’ (2024) के अनुसार, निजी अस्पतालों में उपचार लागत 10-15% सालाना बढ़ी। दवाओं की क़ीमतों में 5-8% की वार्षिक वृद्धि हुई है। 2011-12 से 2022-23 तक भारत में शिक्षा की लागत में औसतन 6-8% की वार्षिक वृद्धि हुई। ‘नेशनल सैम्पल सर्वे’ 2017-18 के अनुसार, निजी स्कूलों में औसत वार्षिक शुल्क प्राथमिक स्तर पर ₹6,000 से बढ़कर ₹20,000 और उच्च-माध्यमिक स्तर पर ₹30,000 तक पहुँच गया। निजी कोचिंग और अतिरिक्त शैक्षिक संसाधनों की लागत में भी 50-70% की वृद्धि हुई। वहीं पर इन्हीं वर्षों में आम मेहनतकश आबादी की वास्तविक आय 20 से 30% तक ही बढ़ी है। अब बड़ा सवाल यह खड़ा होता है कि जब देश की आम मेहनतकश आबादी की आय की तुलना में बुनियादी ज़रूरतें जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य और भोजन कई गुना ज़्यादा महँगा हुआ है तो फिर लोगों की बुनियादी ज़रूरतों को ख़रीदने की क्षमता बढ़ कैसे गयी है? सरकार के ही तमाम आँकड़ों को देखें तो हमें पता चलता है कि आम मेहनतकश आबादी की बुनियादी ज़रूरतों की ख़रीदने की क्षमता कहीं ज़्यादा घटी है। ऐसे में अत्यधिक ग़रीबी कम होने के दावे में झोल ही दिखाई पड़ता है और इसका सच्चाई से कोई लेना-देना नहीं है।

वास्तव में इन आँकड़ों का शोर मचाया ही इसलिए जाता है कि ताकि इस शोर के पीछे आम लोगों की भयंकर तबाही और बदहाली पर पर्दा डाला जा सके। सच्चाई यह है कि पिछले ग्यारह सालों में मोदी सरकार की फ़ासीवादी नीतियों ने देश को देशी-विदेशी पूँजीपतियों की लूट का चरागाह बना दिया है। इन ग्यारह सालों में फ़ासीवादी तन्त्र द्वारा आम लोगों के सामने केवल यह विकल्प प्रस्तुत करने की कोशिश की जा रही है कि वे नारकीय स्थितियों में जीते हुए चुपचाप इस लूट को अपनी क़िस्मत मान लें और इसके खिलाफ़ कोई आवाज़ तक न उठाएँ। लेकिन ज़िन्दगी की सच्चाई को आँकड़ों की चकाचौंध के पीछे छिपाया नहीं जा सकता है। यह सच्चाई हर तरह के फ़ासीवादी दुष्प्रचार और झूठे शोर-शराबे पर भारी पड़ने वाली है। हमें बस इस सच्चाई को लोगों तक लेकर जाने की ज़रूरत है और उन्हें उनके जीवन के ठोस व वास्तविक मुद्दों पर संगठित और गोलबन्द करने की ज़रूरत है।

कहानी

टूटन

● आशीष

“ओय तेरी के! सीधा खड़ा नहीं रह सकते?” डीटीसी बस की ठसाठस भीड़ में खड़ी एक महिला ने पास खड़े एक बुज़ुर्ग आदमी से चीखकर बोला। बेचारे ने कोई जवाब नहीं दिया; बस उसके चेहरे पर बेबसी और उदासी की लकीरें खिंच गयीं। मई में दोपहर की गर्मी और अगले बस स्टॉप के आते ही उतरने वालों से ज़्यादा चढ़ने को लोग बेताब। भूसे को बोरे में दबा-दबाकर जैसे ठूँसा जाता है, कुछ वैसी ही दशा इस बस की थी। जूते से पैर कुचले जाने या दूसरों के शरीर पर लद जाने पर लोग चीख-पुकार मचाते, फिर लोग शान्त होते। फिर चीखते-चिल्लाते। फिर मानो सब कुछ सेटल हो गया हो। हो भी क्यों नहीं, रोज़ की यही कथा है। राजधानी के बाहरी हिस्से पर बसे झुग्गियों में रहने वालों के लिए ऐसे भी बस की आवर्तिता कम है और मजूरी भी इतनी नहीं कि हर कोई ई-रिक्शा या ऑटो का किराया भर सके।

दीपू एक किनारे खड़ा था। उसे याद आया कि अगले स्टॉप पर उसे उतरना है। भीड़ को चीरकर वह गेट के पास पहुँचा, तब तक उसका गन्तव्य आ गया। उसने ड्राइवर को रोकने बोला। नहीं बोलने से बस कहाँ रुकने वाली, फिर जाओ अगले बस स्टॉप पर।

बस से उतरते ही दीपू अपनी जेब पर हाथ फेरकर फ़ोन और बटुए को टटोलकर निश्चिन्त होता है कि सब ठीक है। इलाक़े के चोरों के गिरोह का कहना ही क्या! वे पॉकेटमार से ज़्यादा जादूगर लगते हैं, पलक झपकते ही खेल खेल जाते हैं। बहरहाल लम्बी थकाऊ यात्रा से दीपू का सिर दर्द शुरू हो गया था।

बस स्टॉप के पास ही एक पेड़ के नीचे स्टूल पर थोड़ी देर सुस्ताने के बाद चाय की टपरी वाले से कहा एक कप चाय। चाय की चुस्की शुरू हो गयी। वहीं बगल में स्टॉल पर बैठे एक व्यक्ति ने कहा कि खाली चाय सरजी कुछ और भी तो लीजिए! दीपू ने उस अनजान शख़्स की ओर देखा, लम्बे बाल, दाढ़ी, गले में मोटी चेन, लाल आँखें, मज़बूत भुजाएँ, हाथ में चाय का कप और एक धूम्रदण्डिका।

दीपू ने कहा, “बस और कुछ नहीं चाहिए।” अनजान व्यक्ति ने दीपू से पूछा, “क्या आप पण्डित हो?” प्रतिउत्तर में दीपू ने ना में सिर हिलाया।

“तो क्या आप मुस्लिम हो?”

दीपू ने कहा, “नहीं, पर तुम्हें ऐसा क्यों लगा।”

दीपू लम्बा आदमी है, उसके नैन-नक्श कटारी की तरह तेज़, नाक ऊँची, बोलने का अन्दाज़ थोड़ा धीमा। वह कुर्त्ता-पायजामा पहने था और कन्धे पर सफ़ेद और लाल रंग का तौलिया लपेटे था।

अपरिचित व्यक्ति ने कहा कि उसके कपड़े वीआईपी लग रहे हैं। “मानो आप किसी मन्दिर के पुजारी हों या किसी मदरसे के उस्ताद। मतलब आपकी बिरादरी क्या है?” “मैं ज़ात, बिरादरी या धर्म को नहीं मानता। दीपनारायण नाम है मेरा, लोग दीपू कहते हैं, मैं यहाँ के मज़दूर यूनियन का कार्यकर्ता हूँ।”

“अच्छा मेरा नाम अफ़रोज़ है। मुझे कुछ लोग टूटन बोलते हैं और कुछ लोग विलट। माल ढुलाई का काम करता हूँ। 12 घण्टा खटता हूँ तब 700 रुपये दिहाड़ी पाता हूँ।”

धूम्रदण्डिका की ओर इशारा करते हुए आगे उसने कहा “लोगे आप!” दीपू ने उसकी ओर देखा, और ना में सिर हिलाया। अफ़रोज़ की आँखें लाल थी। हाथ में जो सामग्री थी वह सिगरेट नहीं शायद गाँजा था।

दीपू ने पूछा, “गाँजा क्यों पीते हो भाई?”

अफ़रोज़ ने कहा – “अंकल जी बुरा मत मानना, मैं क्या आपको टूटन लगता हूँ, क्या मैंने आपको कुछ ग़लत बात कही?”

अपने से बड़े उम्र के व्यक्ति द्वारा ‘अंकल जी’ का सम्बोधन दीपू को थोड़ा अटपटा लगा, उसने अफ़रोज़ के संशय को दूर करते हुए उसके सवाल के जवाब में कहा, “नहीं भाई।” पाठक की जानकारी के लिए बता दूँ कि ‘टूटन’ यहाँ स्थानीय इलाक़े में नशाख़ोरी में लिप्त या हमेशा धुत्त रहने वाले या नशा नहीं मिलने पर बुरी तरह व्याकुल हो जाने वाले व्यक्ति को कहते हैं।

अपनी बात को जारी रखते हुए अफ़रोज़ ने कहा, “अंकल जी, गाँजा तो कई मन्दिरों में भी चढ़ाया जाता है, आप बुरा मत मानना! दिनभर खटने के बाद माथा ठनक जाता है, शरीर की नसें अकड़ जाती है और सोचने-विचारने की ताक़त नहीं बचती तो चार-पाँच कश मार लेता हूँ। अच्छा अंकल, ये ओनियन-यूनियन क्या होता है?”

अफ़रोज़ सिगरेट से तम्बाकू झाड़कर उसमें गाँजा भर चुका था। अब वह अपनी चाय की प्याली में बार-बार तर्जनी अँगुली डालकर धूम्रदण्डिका को बाहर से हल्का भिगाकर चिपकाने लगा और दीपू के जवाब को ध्यान से सुनने लगा।

दीपू ने कहा कि यूनियन का मतलब होता है मज़दूरों की एकता। जब किसी मज़दूर भाई-बहन के साथ कोई अन्याय होता है जैसे काम करवाकर कहीं मालिक या ठेकेदार किसी का पैसा मार लेता है, कहीं कोई हादसा होता है या और भी कोई दिक़्क़त होती है तो यूनियन मदद करती है। यूनियन किसी की मदद करने के बदले कोई पैसा नहीं लेती। इतना ही नहीं यूनियन मज़दूरों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने और एकजुट करने के लिए मज़दूर पाठशाला भी चलाती है। फ़लाँ-फ़लाँ जगह पर हर सप्ताह में यूनियन की मीटिंग और सभा होती है जिसमें मज़दूर भागीदारी करते हैं और मिलकर फ़ैसले भी लेते हैं। आज मुट्ठीभर मालिक लूटने के लिए एकजुट हैं इसलिए लाखों मज़दूरों को लूटते-खसोटते हैं। कम से कम दाम में मजूरी कराते हैं। जिस दिन मज़दूर एकजुट हो जायेंगे मालिक की अक्ल ठिकाने लग जायेगी। मज़दूरों को यूनियन का सदस्य बनना चाहिए। मेहनत करने वाले सब एक हैं, एक पर हमला मतलब सबपर हमला, ऐसे समझना होगा।

अफ़रोज़ बीच में बिना कुछ कहे लगातार सुनता रहा। उसकी आँखें चमक उठीं। उसने एक के बाद एक कई सवाल पूछे, मसलन लोगों की एकता कैसे बनेगी, मालिकों के पास इतनी शक्ति है उसका मुक़ाबला कैसे करेंगे आदि आदि। इस तरह के ढेरों सवाल पूछता रहा और दीपू के उत्तर को बड़ी तन्मयता से सुनता रहा।

फिर बोला, “आपकी सब बात मेरे समझ में नहीं आती मगर ऐसा लग रहा है सही बात बोल रहे हो आप, यही रास्ता सही है। अंकल जी, बुरा मत मानना, मैं आपको टूटन तो नहीं लगता? मैं शरीफ़ आदमी हूँ, आप बोलो तो मैं गले का चेन निकाल कर फेंक दूँगा। मैं ग़लत रास्ते पर चला गया था अब मेहनत की रोटी तोड़ता हूँ, पहले बस में ब्लेड मारना, चोरी पॉकेटमारी, छिनतई सब कुकर्म किये हैं मैंने।” वह अपना दृष्टान्त एक अजनबी को बड़ी आत्मीयतापूर्वक सुना रहा था। बातचीत के क्रम में उसके होंठ काँप रहे थे।

जब अपनी अम्मी का ज़िक्र किया तो उसकी आँखें छलछला गयीं - बहुत छोटी-सी उम्र थी तब कैसे उसकी झुग्गी तोड़ दी गयी, मध्य-दिल्ली से काफ़ी सुदूर बवाना में एक जगह उसके बाप को मिली। यहाँ बसने के तीन महीने बाद उसके भाग्य पर ठनका गिरा, साँप के काटने से उसकी अम्मी गुज़र गयीं। दो साल बाद उसकी इकलौती बड़ी आपी रफ़त जहाँ ने एक ड्राइवर शमशाद के साथ भागकर निकाह कर लिया। अब घर में अब्बू और उसके सिवा कोई नहीं था।

उसने बताया कैसे साढ़े पाँच साल की उम्र से ही उसे कई बार शारीरिक, मानसिक, यौनिक और भावनात्मक उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा। अब्बू आज़ादपुर मण्डी से सब्ज़ी लाते और रोज़ शाम को बेचते। अफ़रोज़ को देखने वाला कोई नहीं था। रिश्तेदारों के यहाँ भी कोई मान नहीं था, वहाँ से भागकर फिर अपने अब्बू के यहाँ आ गया। मोहल्ले के सबसे आवारा और बदनाम लड़कों के साथ रहने लगा और उन्हीं के साथ दिनभर खेलता, प्लास्टिक और बोतलें चुनकर पैसे जुटाता। धीरे-धीरे सूँघने वाले नशे की भी आदत लगी।

पहले तो बाप से डरता था, लेकिन एक दिन उसके अब्बू ने डाँटा तो उसने गाली बकते हुए बाप के ऊपर ही ईंट उठा ली। उस दिन से बाप ने फिर कभी कुछ नहीं कहा और धीरे-धीरे अपराध की दुनिया में चला गया। कई बार पुलिस की पिटाई पड़ी, पुलिस के चंगुल से छूटा भी और एक मुक़दमे में डेढ़ साल सज़ा काटने के बाद अक्ल आयी। आगे वह फैक्ट्रियों में काम करने के दौरान मालिकों के घिनौने कृत्य को उद्घाटित करते हुए अपनी आपबीती सुनाने लगा, गुस्से से उसकी आँखें फड़कने लगी। उसने बताया कि कैसे वह अब तक कई बेईमान ठेकेदारों और मालिकों को पीट चुका है। उसका बोलते रहना जारी रहा।

एक गाँजा-युक्त धूम्रदण्डिका सेवन वह पहले ही कर चुका था। यह हाथ में अभी दूसरा था। उसे सुलगाते हुए फिर उसने कहा, “अंकल जी, बुरा मत मानना क्या मैंने कुछ ग़लत कहा? क्या मैं टूटन लगता हूँ ? मैं शरीफ़ आदमी हूँ।”

दीपू ने मई दिवस पर यूनियन की ओर से निकला पर्चा थमाया, तो उसने कहा कि उसे पढ़ना नहीं आता। “यदि ख़ुद नहीं पढ़ सकते तो किसी और पढ़वा लेना”- दीपू ने कहा।

अंकल जी, अपना मोबाइल नम्बर तो देना। दीपू ने कहा – “पर्चे के नीचे लिखा है और यूनियन दफ़्तर का पता भी है।”

“अंकल जी, आज भी अब्बू लहसुन बेचते हैं सब्ज़ी बाज़ार में, मैं ढुलाई करता हूँ। आप ग़लत मत समझना, मैं टूटन नहीं हूँ। आपलोगों को कभी कोई ज़रूरत हो आदेश दे देना बस फिर मैं तो साले की...! मेरे पास मोबाइल नहीं है, अब्बू के नम्बर से फ़ोन करूँगा, नम्बर सेव कर लेना।”

वह सिगरेट के कश खींचे जा रहा था और लगातार बोले जा रहा था। तभी दीपू को याद आया कि उसे यूनियन की एक मीटिंग में जाना है और वह दस मिनट लेट हो चुका है। अफ़रोज़ से विदा लेकर तेज़ क़दमों से वह पास के मोहल्ले में स्थित यूनियन कार्यालय की तरफ़ निकल पड़ा।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

भारत को विश्वगुरु बनाने के ‘डंकापति’ के दावों का सच !

● विवेक

मोदी सरकार के पिछले 11 वर्षों के कार्यकाल के दौरान गोदी मीडिया के ज़बरदस्त प्रोपेगैण्डा के ज़रिये यह छवि बनायी गयी थी कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत विश्वगुरु बन रहा है, ‘ग्लोबल साउथ’ का नेतृत्व कर रहा है और यहाँ तक कि अमेरिका और यूरोप के साम्राज्यवादी देश भी मोदी के “नेतृत्व क्षमता” और “कूटनीतिक कुशलता” का लोहा मान रहे है। भारत में मीडिया मोदी के विदेश दौरों का उसी तरह से गौरव-गान किया करता था जैसा पौराणिक कथाओं में किसी विजयी सम्राट के अपने जीते हुए क्षेत्रों में अगमान पर दरबारी कवि किया करते थे! यह पूरी कवायद मोदी के ‘कल्ट’ निर्माण का ही हिस्सा थी जो कि फ़ासीवादी विचारधारा की एक अहम चारित्रिक अभिलाक्षणिकता है। मोदी की छवि एक ऐसे करिश्माई व्यक्तित्व वाले नेता के रूप में बनायी गयी थी जिसकी कार्य-कुशलता और अचूक नीतियों के कारण देश का डंका दुनिया में बज रहा था। रही-सही कसर भाजपा के आईटी सेल द्वारा प्रचारित किये गये व्हाट्सएप्प फॉरवर्ड्स और विचित्र क़िस्म के मीम और डिजिटल पोस्टरों ने कर दी थी! हालाँकि यह पूरी क़वायद ज़्यादातर मौक़ों पर हास्यास्पद ही लगती थी; ‘वॉर रुकवा दी पापा’ जैसे विज्ञापन को कौन भूल सकता है जिसमें भक्तों के प्रिय ‘मोईजी’ ने रूस-यूक्रेन युद्ध रुकवा दिया था!

फ़ासीवादी प्रचार में बहने वाली और फ़ासीवादियों के हर झूठ को सच मानने वाली टुटपुंजिया आबादी के एक हिस्से ने मोदी के नेतृत्व का विश्व में डंका बजने के इस झूठे प्रचार पर भी आँख मूँदकर विश्वास किया। विशेषकर, शहरी उच्च-मध्यम वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न-मध्यम वर्ग के हिस्सों में यह प्रचार सबसे ज़्यादा कारगर रहा क्योंकि आम तौर पर भी फ़ासीवादी विचारधारा का सबसे ज़्यादा असर इन्हीं वर्गों पर होता है। हालाँकि, ‘डंकापति’ के विश्व राजनीति में बजने वाले डंके की ज़मीनी हक़ीक़त कुछ और ही थी। इससे आज कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि पिछले एक दशक में मोदी के शासनकाल में, बुर्जआ दृष्टिकोण से भी अगर देखा जाये, तो भारत की विदेश-नीति बुरी तरह से असफल रही है।

वैश्विक स्तर पर भारतीय राज्यसत्ता की गिरती साख

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1960 के दशक से लेकर अब तक भारत की अवस्थिति आम तौर पर साम्राज्यवाद के ‘जूनियर पार्टनर’ की रही है। 1960 और 1970 के दशक में ‘गुट-निरपेक्ष आन्दोलन’ के दौर में भारत का शासक वर्ग संशोधनवादी सोवियत साम्राज्यवादियों के धड़े से ज़्यादा नज़दीकी रखता था, हालाँकि ज़रूरत पड़ने पर समय-समय पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों से भी समझौते करता था। कई मौक़े ऐसे भी आये जब भारत ने स्वतन्त्र अवस्थिति भी अपनायी। 1980 का दशक आते-आते वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवादी शक्तियों का सन्तुलन बदलने लगा था। 1990 के दशक में सोवियत यूनियन के पतन के बाद, भारत के शासक वर्ग ने अपने हितों के मद्देनज़र तात्कालिक तौर पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों से नज़दीकी बढ़ाना ज़्यादा मुनासिब समझा। वैश्विक असेम्बली लाइन में भारत द्वारा कच्चा माल और सस्ता श्रम मुहैया कराने की क्षमता को यूरोपीय व अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने तरजीह दी। इसके साथ ही पश्चिमी साम्राज्यवादी देश एशिया में चीन की बढ़ती साम्राज्यवादी आकांक्षाओं के बरक्स भारत की अवस्थिति को अहम मान रहे थे। इस तरह 1990 के दशक से ही भारत का शासक वर्ग पश्चिमी साम्राज्यवादियों का एशिया में प्रमुख साझेदार रहा है। लेकिन इसके बावजूद इसने राजनीतिक तौर पर अपनी स्वतन्त्र अवस्थिति बनायी रखी, फिर चाहे अमेरिका द्वारा लड़े गये इराक़ युद्ध का खुला मौखिक विरोध करना हो, सैन्य मदद मुहैया कराने से इन्कार करना हो या अमेरिकी प्रतिरोध के बावजूद नाभिकीय हथियार परीक्षण करना हो।

कश्मीर मसले पर भी पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों का रुख भारत के प्रति नरम ही रहता था। यह इस बात से झलकता था कि संयुक्त राष्ट्र में पाकिस्तान द्वारा कश्मीर मसले को रखने के बावजूद भी इसे सदस्य देशों द्वारा दो देशों का आपसी मसला क़रार दिया जाता रहा था। संक्षेप में, वैश्विक स्तर पर, विशेषकर दक्षिण एशिया में भारत की अवस्थिति सुदृढ़ बनी हुई थी। लेकिन मोदी के सत्तासीन होने के बाद से इसमें परिवर्तन होने लगा।

इस एक दशक में, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका और मालदीव तक से कूटनीतिक सम्बन्ध बिगड़ते ही रहे। ये तमाम देश भारत के बजाय चीन से अपनी नज़दीकी बढ़ाते गये। चीन ने श्रीलंका में हम्बनटोटा बन्दरगाह सहित अन्य बुनियादी अवसंरचनागत परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में ऋण प्रदान किया है। चीन ने नेपाल को कई सड़क परियोजनाएँ देने का वायदा किया है। इसके साथ ही वैकल्पिक व्यापार मार्ग की पेशकश की है जिससे भारत पर नेपाल की निर्भरता कम होगी। बांग्लादेश में हुए सत्ता-परिवर्तन, भारत का शेख हसीना को पनाह दिया जाना, तीस्ता जल बँटवारे का न सुलझना आदि मुद्दों के कारण भारत-बंग्लादेश सम्बन्धों में भी कड़वाहट आयी है। वहीं चीन द्वारा बांग्लादेश में ज़बरदस्त निवेश किया जा रहा है जिसके कारण चीन के साथ वहाँ की सत्ता की क़रीबी बढ़ती जा रही है।

ऐसा सिर्फ़ भारतीय उपमहाद्वीप के देशों के साथ ही नहीं बल्कि पश्चिम के ऐसे देश, जिनसे भारतीय राज्यसत्ता के पारम्परिक तौर क़रीबी रिश्ते रहे हैं, उनके सम्बन्ध में भी हुआ है। जुलाई 2023 में, कनाडा में एक खालिस्तान समर्थक नेता की हत्या में भारत के खुफिया एजेण्टों के शामिल होने की बात सामने आने के बाद से भारत-कनाडा सम्बन्ध बिगड़ने लगे। भारत सरकार ने दावा किया कि कनाडा ने इस हत्या के बारे में किसी तरह का सबूत नहीं दिया है, जबकि कनाडा के अनुसार उसे अमेरिकी खुफिया एजेंसियों द्वारा इस बारे में खुफिया जानकारी दी गयी थी। आज दो सालों के बाद भी भारत-कनाडा सम्बन्धों में सुधार नहीं हुआ है। अगर इन सभी मसलों पर ग़ौर करें तो हम पायेंगे कि हाल के समय में भारतीय राज्यसत्ता द्वारा अपने से कम सामरिक शक्ति वाले देशों के प्रति बेवजह उग्र रवैया अपनाया गया है।

उरी आतंकी हमले के बाद हुए ‘सर्जिकल स्ट्राइक’, पुलवामा हमले के बाद हुए ‘बालाकोट एयर स्ट्राइक’, पहलगाम में आतंकी हमले के बाद हुए ‘ऑपरेशन सिन्दूर’- इन तीनों ही कार्यवाइयों को भाजपा-संघ परिवार की प्रोपेगैण्डा मशीनीरी और गोदी मीडिया ने जनता के बीच खूब ज़ोर-शोर से प्रचारित किया तथा मोदी की एक मज़बूत नेता की छवि बनाने का प्रयास किया गया। दूसरी तरफ इन आतंकी हमलों की जाँच को लेकर भाजपा सरकार का रवैया हमेशा लीपा-पोती वाला बना रहा। ‘ऑपरेशन सिन्दूर’ के दौरान जिस तरह का युद्धोन्माद भारतीय गोदी मीडिया ने फैलाया, उसे पूरी दुनिया ने भी देखा। इस सैन्य झड़प (जिसे युद्ध बताया जा रहा था) में भारत की सामरिक शक्ति को लेकर भी दुनिया के समक्ष प्रश्न उठने शुरू हुए। भारत द्वारा फ़्रांस से ऊँची क़ीमतों पर ख़रीदे गये अत्याधुनिक राफेल सैन्य-जेट की पाकिस्तान द्वारा ख़रीदे गये चीनी हथियारों के समक्ष विफलता की ख़बर सबसे ज़्यादा पश्चिमी मीडिया ने ही छापी। युद्ध में हुए नुक़सान को भारत की सेना भी दबे सुर में मानती रही। हालाँकि मोदी सरकार का ध्यान तो कहीं और ही था। भाजपा व नरेन्द्र मोदी-अमित शाह द्वारा इस युद्धोन्माद का इस्तेमाल अपनी चुनावी स्थिति मज़बूत करने के लिए किया जा रहा था।

इसके बाद आनन-फ़ानन में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प द्वारा युद्ध-विराम की घोषणा ने मोदी सरकार की फ़ज़ीहत देश की जनता के सामने भी करवा दी। आज एक माह बीत जाने के बाद देश के प्रधानमन्त्री और उनके सिपाह-सालार विदेशमन्त्री एस.जयशंकर इस सवाल का जवाब नहीं दे पा रहें कि आखिर युद्ध-विराम कि घोषणा अमेरिकी राष्ट्रपति ने क्यों और कैसे कर दी? आख़िर “मज़बूत छवि वाले देश के 56 इंच के सीने वाले” प्रधानमन्त्री को इस मसले पर क्यों झुकना पड़ा? इसके अलावा ट्रम्प प्रशासन द्वारा ट्रेड टैरिफ़ बढ़ाने के सवाल पर भी अभी तक प्रधानमन्त्री चुप क्यों हैं?

इस पूरी प्रक्रिया में भारत की छवि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पड़ोसी मुल्कों से झगड़ने वाले मुल्क की बनी। बीच-बीच में पश्चिमी साम्राज्यवादियों का विश्वास जीतने के लिए भारत के शासक वर्ग ने कुछ प्रयास भी किये, जैसे कि फिलिस्तीन में युद्ध विराम का मसला जब भी संयुक्त राष्ट्र में उठाया गया तब भारत ने वोटिंग नहीं की। लेकिन इसके परिणामस्वरूप भारत की साख मध्य-पूर्व, अफ्रीका, लातिनी अमेरिका और दक्षिण एशिया के उन देशों के बीच गिरने लगी जो युद्ध-विराम का समर्थन कर रहे थे। भारत की विदेश नीति की असफलता का अनुमान इस बात से ही लग जाता है कि ज़ायनवादी इज़रायल द्वारा ईरान पर 13 जून को किये गये हमलों के बाद भारत ने एस.सी.ओ (शंघाई कॉर्पोरेशन ऑर्गनाइज़ेशन – जिसका भारत भी सदस्य है) की ओर से हमले की निन्दा में दिये गये बयान से अपने को अलग कर लिया।

भारत की इस लगातार गिरती साख का नवीनतम मुज़ाहिरा इस बार ‘ऑपरेशन सिन्दूर’ के बाद सामने आया। ‘ऑपरेशन सिन्दूर’ के बाद वैश्विक स्तर पर सहानभूति पाकिस्तान को मिली। इससे निपटने के लिए मोदी सरकार को सात सर्वदलीय सदस्यीय सांसदों का प्रतिनिधिमण्डल 32 देशों के दौरे पर भेजना पड़ा ताकि दुनिया के समक्ष भारत के पक्ष को रखा जा सके! लेकिन ढाक के तीन पात, हालात वैसे ही बने रहे। इसके उलट, पाकिस्तान को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के मातहत आतंकवाद-विरोधी कमिटी की उपाध्यक्षता और तालिबान सैंक्शन कमिटी की अध्यक्षता का ज़िम्मा दे दिया गया! हालाँकि ये तमाम समितियाँ वास्तव में सिर्फ नाम गिनाने के लिए ही होती है, पर वैश्विक मंच पर इन समितियों में पाकिस्तान को महत्वपूर्ण पद दिये जाने के क़दमों को भारत की कूटनीतिक पराजय के तौर पर देखा जा रहा है। पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों समेत बाक़ी देश भी इससे सहमत है कि पाकिस्तान खुद आतंकवाद की पनाहगाह रहा है और वहाँ की राज्यसत्ता अपने यहाँ पनप रहे आतंकवाद को नियन्त्रित नहीं कर सकती है, हालाँकि इसमें ख़ुद इन साम्राज्यवादी देशों का हाथ भी रहा है। लेकिन इसके बावजूद वह दक्षिण एशिया और मध्य-पूर्व में पाकिस्तान को अपने साझेदार के तौर पर देखता रहा है और अभी भी वैसे ही देख रहा है।

और अन्त में....

आज से पहले कभी किसी प्रधानमन्त्री या पार्टी ने इस हद तक जाकर युद्धोन्माद का इस्तेमाल अपने चुनावी फ़ायदे के लिए शायद ही किया हो, जितना नरेन्द्र मोदी और भाजपा ने किया है। पिछले एक दशक में पड़ोसी देशों के प्रति बेवजह की आक्रमकता दिखाकर और वैश्विक स्तर पर निरंकुश सत्ताओं को समर्थन देकर फ़ासीवादी मोदी सरकार ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की बेतहाशा फ़जीहत करवायी है। लेकिन जैसा कि हमने लेख की शुरुआत में ही कहा था कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी भद पिटवाने के बावजूद गोदी मीडिया और संघी आई.टी सेल की ट्रोल आर्मी ने मोदी की छवि का आभामण्डल “विश्व-विजयी सम्राट” सरीखा बना रखा है! हालाँकि देर-सबेर सच्चाई की ठोस दीवार से टकराकर यह आभामण्डल भी टूटेगा!

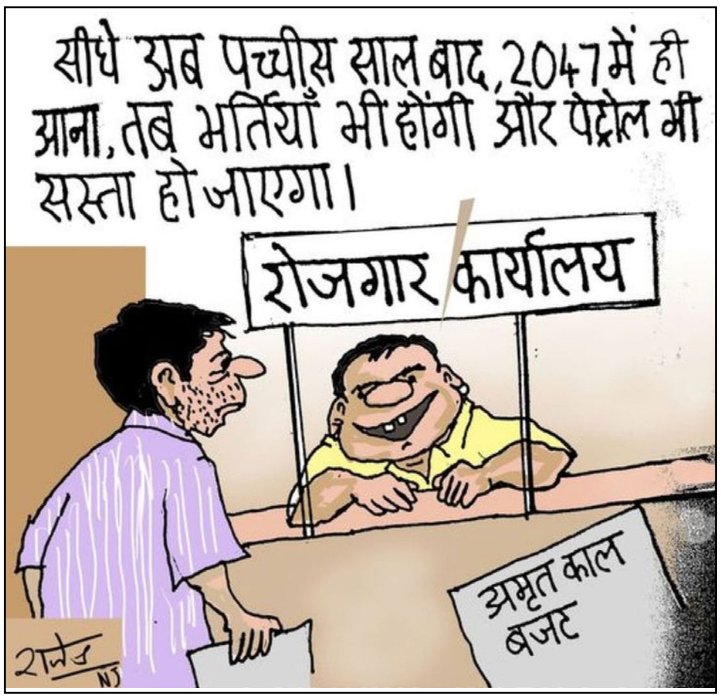
सीधे अब पच्चीस साल बाद, 2047 में ही आना, तब भर्तियाँ भी होंगी और पेट्रोल भी सस्ता हो जाएगा।
रोजगार कार्यालय
अमृत काल बजट

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016